दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्गदर्शक आध्यात्मिक मासिक

वीर सं० २४९३ तंत्री जगजीवन बाउचंद दोशी वर्ष २२ अंक नं० १२

यह है ज्ञानी संतों का आदेश।

चारित्र

हे जीव! मैं नित्य ज्ञायक हूँ, ऐसा निर्णय करके अंतर में उसका पता लगा ले। चैतन्य निधि अमृत का सागर स्वयं निकट है-विद्यमान है; उपयोग को अंतर्मुख करे, उतनी देरी है-अंतर्मुख होते ही कभी नहीं प्राप्त किया ऐसा अतीन्द्रिय आनंद तुझे अपनी आत्मा में अनुभवरूप होगा।

ज्ञान

सब अपने में भरा है, कहीं बाहर शोधने जाना पड़े ऐसा नहीं है। मेरा और लोगों से संसार से कुछ संबंध नहीं है। मैं नित्य ज्ञायक हूँ, मेरे ज्ञायकत्व में रागांश का भी अभाव है, इसप्रकार सबके साथ संबंध तोड़कर अंतरंग में एक ज्ञायक के साथ ही संबंध कर, ज्ञायक ही मैं हूँ—इसप्रकार अंतर में शांति से एकाग्र होकर, यही ज्ञानघन मैं हूँ, ऐसा अनुभव करने से उस अनुभव में आनंदस्वरूप परमात्मतत्त्व प्रगट होता है।

दर्शन

पूज्य कानजीस्वामी

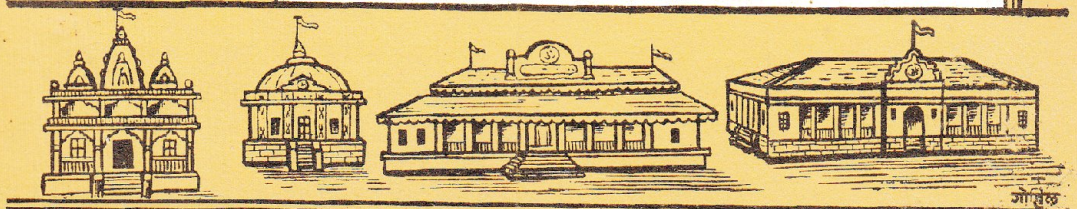

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (सौराष्ट्र)

अप्रेल १९६७] वार्षिक मूल्य ३) (२६४) एक अंक २५ पैसा [चैत्र सं० २०२३

विषय-सूची

पुण्य और सम्यक्त्व
भगवान का अवतार
भगवान का वैराग्य
अंतर्मुहूर्त में आत्मा को साधने की बात
शुद्धात्मा का अनुभव करो
अनुभूति से बाहर दूसरा मार्ग नहीं.. नहीं.. नहीं..
विविध वचनामृत
सुखी होने के लिये क्या किया जाये
आत्मा कैसे ज्ञात हो
ध्येय की सिद्धि
श्री भक्तामर स्तोत्र
स्वानुभूति
धर्मप्रभावना सहित तीर्थयात्रा समाचार
ज्ञानभावना

प्रेस में छप रहे हैं

१. चिद्विलास

२. वस्तुविज्ञानसार

३. अध्यात्म संदेश

(श्री टोडरमलजी कृत रहस्यपूर्ण चिट्ठी तथा उन पर प्रवचन)

४. नियमसारजी शास्त्र की मूल गाथा के पद्यानुवाद

५. 'अपूर्व अवसर' नामक महाकाव्य श्री राजचंद्रजी कृत है, उस पर स्वामीजी का उत्तम प्रवचन तथा सामायिक पाठ व कुन्दकुन्दाचार्य कृत बारह भावना। श्री गुमानीरामजी (स्व० टोडरमलजी के सुपुत्र) कृत समाधिमरण स्वरूप पंडित जयचंद्रजी बारह भावना आदि का संग्रह-ग्रंथ छप रहा है।

६. अष्टपाहुड पंडित जयचंद्रजी की टीका आधुनिक हिन्दी में छपने की तैयारी कर रहे हैं।

आत्मधर्म

आजीवन सभ्य योजना

आत्मधर्म मासिक पत्र के हजारों की संख्या में ग्राहक हैं। पत्र ज्यादा से ज्यादा विकसित बने और उनके स्थायी ग्राहकों को हरसाल वार्षिक शुल्क भेजने का कष्ट न हो, संस्था को भी व्यवस्था में सुविधा रहे। अतः ऐसा निर्णय किया गया है कि- १०१) रुपये लेकर 'आजीवन सभ्य' योजना चालू की जाये, एवं उन्हें 'आत्मधर्म' हरसाल बिना वार्षिक शुल्क भेजा जाये। अतः जो सज्जन इस योजना से लाभ उठाना चाहें, वे निम्न पते पर १०१) रुपया भेजकर इस योजना में सहयोग प्रदान करें। यह योजना गुजराती तथा हिन्दी दोनों भाषाओं के 'आत्मधर्म' के लिये चालू की गई है।

पत्र व्यवहार का पता—
मैनेजर दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

शाश्वत् सुख का मार्गदर्शक मासिक-पत्र

आत्मधर्म

: संपादक : जगजीवन बाउचंद दोशी (सावरकुंडला)

अप्रेल : १९६७ ☆ वर्ष २२वाँ, चैत्र, वीर नि०सं० २४९३ ☆ अंक : १२

पुण्य और सम्यक्त्व

'पुण्य' और 'सम्यक्त्व' के बीच महान अंतर है; इसलिये हे जीव! तू सम्यक्त्व की आराधना कर! पुण्य की अपेक्षा सम्यक्त्व की कोई अचिंत्य महिमा है, उसे दर्शाते हुए श्री योगीन्दुस्वामी कहते हैं कि—

निर्मल सम्यक्त्वाभिमुखानां मरणमपि भद्रं।
तेन विना पुण्यमपि समीचीनं न भवति॥२-५८॥
जे णियदंसण-अभिमुहा सोक्खु अणंतु लहंति।
तं विणु पुण्णु करंता वि दुक्खु अणंतु सहंति॥२-५९॥

जो निर्मल सम्यक्त्व के सन्मुख है, उसका तो मरण भी भद्र है—उत्तम है; सम्यक्त्व के बिना तो पुण्य भी समीचीन नहीं है, अच्छा नहीं है।

जो जीव निजदर्शन के सन्मुख है अर्थात् सम्यक्त्व का आराधक है, वह तो अनंत सुख प्राप्त करता है और उससे रहित जीव पुण्य करते हुये भी अनंत दुःख सहता है।

[—परमात्मप्रकाश से]

भगवान का अवतार

[राजकोट में पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव प्रसंग पर भगवान आदिनाथ का जन्म कल्याणक दिन (वैशाख सुदी ९) पूज्य स्वामीजी के प्रवचन में से]

आज पंच कल्याणक महोत्सव में भगवान का जन्म कल्याणक हुआ। यहाँ पर आत्मा के अनुभव में भगवान का अवतार कैसे हो, अर्थात् सम्यग्दर्शन कैसे प्राप्त हो, इसकी बात है। अंतर में मतिश्रुत को स्वसन्मुख करके जिन्होंने शुद्धात्मा का अनुभव किया उनकी निर्विकल्प अनुभूति में भगवान की आत्मा का जन्म हुआ, उस सम्यग्दृष्टि की परिणति में भगवान पधारे।

'आत्मा शुद्ध है, अशुद्ध है' ऐसे विकल्प में अटकने से शुद्धात्मा का अनुभव नहीं होता। जो शुद्ध आत्मा वस्तु है उसको एकरूप से अनुभव में लेना उसका नाम निर्विकल्पता है और पर्याय में भगवान आत्मा की प्रसिद्धि होती है। गुण-गुणी के भेद के आश्रय से राग की उत्पत्ति होती है। ज्ञानस्वभाव को ज्ञानस्वभावरूप से ही देखने पर, वह व्यक्त और प्रगट होता है, ऐसे आत्मा का अनुभव करना उसका नाम 'शुद्धनय' है। यह शुद्धनय निर्विकल्प है, इस दृष्टि से देखने पर शुद्धवस्तु अनुभव में आती है, वह शुद्धवस्तु सर्व परभावों का नाश करनेवाली है, उसके अनुभव में परभावों का प्रवेश ही नहीं है, शरीर में कर्म में या रागादि परभावों में भगवान आत्मा अवतरित नहीं होता, भगवान आत्मा तो शुद्धनयरूप निर्मल ज्ञान-गृह में अवतरित होता है। ऐसा भगवान का अवतार मोक्ष का कारण है।

देखो जिनभगवंतों के पंच कल्याणक होते हैं, उन भगवंतों ने प्रथम इसप्रकार शुद्धनय से निजात्मा का अनुभव किया था, पश्चात् आत्मा को पूर्ण रूप से साधकर वे तीर्थंकर हुये। 'इन तीर्थंकरों ने क्या कहा,' यह समझर सम्यग्दर्शन का जन्म कैसे हो, उसकी यह बात है, अपनी आत्मा में अखंड चैतन्य प्रभु को प्रगट अनुभव में लेना वह वास्तविक कल्याण है, ऐसे अपने आत्मा के भान बिना दूसरा सब परभावरूप है, भगवान आत्मा का स्वभाव तो सर्व परभावों का नाश करनेवाला है, ऐसे आत्मा का जिसने अनुभव किया उसी ने भगवान को पहिचाना। अरे चैतन्य के अमूल्य रत्नों से भरपूर यह भगवान, उसको अज्ञानीजन तुच्छ परभाव के जितना मान लेते हैं, भाई, क्षण में केवलज्ञान की कला प्रगट करे ऐसी शक्ति चैतन्य स्वभाव

में सदा विद्यमान है, ऐसी विद्यमान वस्तु का अनुभव करना चाहिये, इस वस्तु में आठ कर्म नहीं हैं; तीर्थंकर प्रकृति के रजकण भले ही बंधे हों, किंतु उनका चैतन्य में अभाव है; और रागादि परभावों का भी इसमें अभाव है, ऐसे आत्मा को जब जाना तब धर्मात्मा के मन में समस्त परभावों की महिमा नष्ट हो गयी, वह जानता है कि उसकी चैतन्य वस्तु विकार का नाशक है; अर्थात् विकार को नष्ट करे ऐसास उसका स्वभाव है, विकार को उत्पन्न करे ऐसी उसकी चैतन्यवस्तु नहीं है, क्षण-क्षण में अपनी निर्मल पर्याय उत्पन्न करना चैतन्य वस्तु का स्वभाव है, भगवान आदिनाथ का फाल्गुन वदी ९ मीं को जन्म हुआ, वास्तव में तो भगवान आदिनाथ क्षण-क्षण में अपनी निर्मल परिणति में ही उत्पन्न होते थे। वही वास्तव में उनका जन्म था, देह में भगवान उत्पन्न हुये या मरुदेवी माता के उदर में भगवान का जन्म हुआ, ऐसा कहना यह व्यवहार है, अहा-तीर्थंकर का जहाँ अवतार होता है, वहाँ अंधकार नहीं रहता, जगत में प्रकाश फैल जाता है तो जिसके अंतर में स्वानुभूतिरूप सूर्य के प्रकाश से जगमगाता चैतन्य भगवान का अवतार हुआ। उसके अंतर में अज्ञान का अंधकार कैसे रह सकता है ? वहाँ परभाव भी कैसे रह सकते हैं ? वहाँ तो ज्ञान प्रकाश से आत्मा चमक उठा, अहो आत्मा में परम अमृत की वर्षा हो ऐसी यह बात है, विकार उसकी पर्याय में रहे ऐसा आत्मा का शुद्ध स्वभाव नहीं है, किंतु विकार का नाश करने का आत्मा का स्वभाव है, तथा निर्मल ज्ञान-आनंदरूप परिणति प्रगट करके, उसमें रहने का आत्मा का स्वभाव है, उसको जाने तो स्वानुभव में आनंदमय आत्म-प्रभु का अवतार हो, और संसार के दु:खरूप अवतार मिटें।

स्वहित साधन का स्वर्णावसर

अरे ! इस दुर्लभ अवसर को प्राप्त कर भी हे जीव यदि तूने अपने स्वज्ञेय को न जाना और स्वाश्रित मोक्षमार्ग का साधन नहीं किया तो तेरा जीवन व्यर्थ है। यह अवसर हाथ से छूट जाने पर पछताता रहेगा। इसलिये सावधान होकर स्वहित साधने में तत्पर हो। यह स्वहित साधने का स्वर्ण अवसर है।

भगवान का वैराग्य

[राजकोट में पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के समय भगवान श्री आदिनाथ प्रभु के दीक्षा कल्याणक के पश्चात् दीक्षावन में पूज्य स्वामीजी का भावभीना प्रवचन। (वैसाख सुदी १०)]

भगवान ऋषभदेव को आत्मज्ञान तो जन्म से ही था; आज वैरागय पाकर भगवान ने दीक्षा अंगीकार की और मुनि हुये। भगवान दीक्षा कल्याणक की तैयारी के समय बारह वैराग्य भावना भाते थे। तीर्थंकर और मुनि बारंबार बारह भावना भाते हैं—भगवान ऋषभदेव ने भी आज दीक्षा प्रसंग में बारह भावना भायी हैं। अहो! भगवान आज बारह भावना भा करके मुनि हुये! भगवान ने कैसी भावना भायी थी ?—

अपूर्व अवसर ऐसा कब आयेगा ?
कब होंगे हम बाह्यांतर निर्ग्रंथ जो...
सर्व संबंध का बंधन तीक्ष्ण छेदकर,
विचरूँगा कब महत्पुरुष के पंथ जो...

'अहो, अनंत तीर्थंकरों ने जिस पंथ में विचरण किया उस पंथ में कब विचरण करूँगा ? चैतन्यस्वरूप में कब लीन होऊँगा ?' ऐसी भावना धर्मी जीव बारंबार भाते हैं। परंतु प्रथम जिसने ऐसा स्वरूप जाना हो उसको ही उसकी सच्ची भावना होती है। भगवान ने तो आज ऐसी दशा साक्षात् प्रगट की है। चक्रवर्ती भी वैराग्य प्राप्त कर दीक्षा लेते हैं, पश्चात् हजारों रानियाँ विलाप करती हों, परंतु ये चक्रवर्ती (शांतिनाथ, कुंथुनाथ वगैरह तीर्थंकर) कहीं स्त्री के कारण संसार में नहीं रुके थे; स्वयं के राग के कारण रुके थे। वह राग-टूटा, अब कोई उनको संसार में रोक नहीं सकता। अरी रानियों! तुम्हारी तरफ का हमारा राग मर गया है, उसको अब तुम जीवित नहीं कर सकती हो। जिसप्रकार मरे हुये मुर्दे को जीवित करके श्मशान से नहीं ला सकते, उसीप्रकार जिसका राग टूटा और वैराग्य प्राप्त कर संसार छोड़ने को तैयार हुआ उसको कोई रोक ही नहीं सकता।

अरे, इस जगत में अपनी आत्मा के सिवाय दूसरा कौन शरण है ? यह देहादि समस्त

संयोग क्षणभंगुर हैं। देखो! नाच करते-करते देवी की आयु पूर्ण हो गई।—श्रीमद् राजचंद्र बारह भावनाओं का वर्णन करते हुये कहते हैं कि—

विद्युत लक्ष्मी प्रभुता पतंग, आयुष वह तो जल के तरंग;
पुरन्दरी चाप अनंग रंग, क्या रचिये जो क्षण का प्रसंग?

देखो! यह अनित्यभावना। बच्चा माता की गोद में आने के पहले ही 'शरीर' रूपी अनित्य माता की गोद में चला जाता है, पुत्र के माता के देखने के पहले ही उसकी आयु घटने लगती है।—ऐसी देह की अनित्यता है। लक्ष्मी का संयोग बिजली की चमक के समान क्षणभंगुर है, प्रभुता अर्थात् पुण्य का ठाठ, पतंग के कच्चे रंग के समान क्षणिक है, आयु पानी की तरंग के समान अत्यंत चंचल है, और कामभोग इन्द्र धनुष के समान क्षणभंगुर हैं। अरे ऐसे क्षणभंगुर विषयभोगों में क्या रचना (लगना)?—इसप्रकार संसार की अनित्यता को विचार कर, राग तोड़कर, भगवान निजस्वरूप में लीन होने को तैयार हुये।

तब लौकांतिक देव आकर अनुमोदना पूर्वक कहते हैं कि—'प्रभो! आपने वैराग्य प्राप्त कर दीक्षा का विचार किया—बहुत उत्तम कार्य किया! प्रभु! आपकी भावना सर्वोत्तम है। प्रभु! यहाँ से मनुष्यभव पाने के लिये हम भी ऐसी मुनिदशा के लिये ही तरस रहे हैं। धन्य आपका अवतार! आप केवलज्ञान प्राप्त करेंगे तब आपकी वाणी जगत के बहुत जीवों को आत्महित का कारण होगी। धन्य आपका अवतार, और धन्य वह मुनिदशा!'

भगवान ऋषभदेव मुनि होने के लिये वन में विहार कर गये; अयोध्या के नगर जन आश्चर्य से निरखते रहे। असंख्य वर्षों से इस भरतक्षेत्र में मुनिदशा का लोप था, आज निर्ग्रंथ पद की दीक्षा अंगीकार करके ऋषभदेव भगवान ने भरतक्षेत्र में मुनिमार्ग प्रगट किया। भगवान ने ऐसा चिंतवन किया:—

अनंत काल से लगे हुए इस समस्त राग को छोड़कर मैं निजस्वरूप में रहना चाहता हूँ। चंचलता-चारित्रदोष का यह राग-अपने कारण से था, अब उसका तोड़कर निजानंद स्वरूप में लीन होने जा रहा हूँ। राग में दुःख का ही अनुभव था, उसे छोड़ मैं अनंत सुख के धाम निजपरमात्मपद में लीन होऊंगा।

अनंत सुख नाम दुःख, वहाँ रही न मित्रता;
अनंत दुःख नाम सौख्य, प्रेम तहँ विचित्रता;

उघाड़ न्यायनेत्र को, सु देख-देख, देख तूं,
निवृत्ति शीघ्रमेव धार वह प्रवृत्ति छोड तूं।

अरे, अनंत, अनुपम, सत्य सुख का धाम ऐसा यह आत्मा है। उसमें लीन होने से ही सुख है, उसके बिना अन्य किसी भी परभाव में सुख नहीं है। अत: उस समस्त परभाव की प्रवृत्ति को छोड़ निज स्वरूप में लीन होना चाहिये।

ऋषभदेव भगवान ने तो आज साक्षात् निवृत्ति अंगीकार करके स्वसन्मुखता के आलंबन के बल द्वारा मुनिदशा प्रगट की। मुनिदशा में अतीन्द्रिय आनंद की लहरों में भगवान झूलते थे, उसमें जरा भी दु:ख नहीं था। छठवें और सातवें गुणस्थानवर्ती मुनिवर होकर बारंबार निर्विकल्प अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव भगवान किया करते थे।

सभी तीर्थंकरों को दीक्षा के पूर्व जातिस्मरण हुआ करता है और तब वैराग्य की धारा एकदम बढ़ जाती है। वैराग्य की धुन में ऐसे मस्त हो जाते हैं कि दीक्षा लेने से किन-किन को आघात पहुँचेगा इसे देखने के लिये वे जरा भी ठहरते नहीं। किसी के कारण वे संसार में ठहरे हुए थे, ऐसा नहीं है। वे समस्त राग को तोड़कर निजपद में लीन होने के लिये तैयार हुये हैं, उससे उन्हें कोई रोक नहीं सकता। वीतराग भाव की धारा उछल रही है, इससे उन्हें संसार के बंधन में कोई बाँध नहीं सकता। वीतराग-धारा को उल्लसित करके ऋषभदेव भगवान आज मुनि हुए।

आज भगवान आदिनाथ ने दीक्षा ली और आज ही भगवान महावीर प्रभु के केवलज्ञान-कल्याणक का शुभ दिन है। भगवान महावीर आज सर्वज्ञ परमात्मा हुये, उन्हें अखण्ड आनंद की प्राप्ति हुई। ऐसे सर्वज्ञपरमात्मा की जय हो।

सर्वज्ञ का धर्म सुशर्ण जाणी, आराध! आराध! प्रभाव *आणी;
अनाथ एकांत सनाथ होंगे, इसके बिना कोई न साथी होंगे।

*(*आणी-लाकर)*

'सर्वज्ञ भगवान का कहा हुआ आत्मा का धर्म, यानी आत्मस्वभाव ही शरणरूप है' ऐसा जानके हे जीव तू आदर पूर्वक इसकी आराधना कर। उत्साह से आत्मा की आराधना कर, पुरुषार्थ की मंदता छोड़।

'अनंत तीर्थंकर जिस मार्ग से सिद्ध हुए वही मेरा मार्ग है, आज मैं भी उसी मार्ग से जाता हूँ' ऐसी भावना से सिद्ध भगवंतों को नमस्कार करके भगवान ने मुनिपद स्वीकार किया और

आत्मध्यान में लीन होकर सप्तम गुणस्थान तथा चौथा मन:पर्ययज्ञान प्रगट किया। भगवान एकाकी वन में विचरने लगे, अडोल रह चैतन्य के ध्यान में, आनंद में मग्न रहने लगे।

एकाकी विचरते जो स्मशान में
अरु पर्वत में बाघ सिंह संयोग जो
अडोल आसन अरु मन में नहीं क्षोभता
परम मित्र का मानों पाया योग जो
अपूर्व अवसर ऐसा निश्चय आइये।

अहा! ऐसी साक्षात् मुनिदशा भगवान ऋषभदेव ने आज प्रगट की थी [यह देह मेरी नहीं, न मुझे देह की आवश्यकता है, अत: सिंह आकर उसे खा जाये तो उस पर द्वेष न हो, मन में क्षोभ नहीं आवे ऐसी अडोल आत्मध्यानदशा में कब लीन रहूँ? यद्यपि भगवान तीर्थंकर को सिंह बाध फाड़ खाये इसप्रकार का उपदेव होता नहीं, परंतु चाहे जैसा उपसर्ग आवे तो भी आत्मध्यान से नहीं डिगें और चैतन्य के ध्यान में लीन रहके केवलज्ञान प्रगट करे ऐसी दशा में मुनि भूलते रहते हैं।]

वीतरागी चिदानंद शीतल स्वभाव में भगवान एकाग्र होकर ऐसे जम गये कि बाहर कौन पूजता है। इस पर लक्ष्य नहीं जाता था। अमृत का पूर्ण सागर आत्मा में भरा हुआ था, उसमें लीन होकर आनंद का निर्विकल्प अनुभव करने लगे।

[प्रत्येक आत्मा को आत्मज्ञान करके ऐसी मुनि दशा की भावना भानी चाहिये। इस जीव को ऐसी चारित्रदशा प्रगट किये बिना मुक्ति की प्राप्ति नहीं,] मुनिदशा ही मोक्ष की साक्षात् साधकदशा है, यह तो परमेष्ठी है।

भगवान ने पृथ्वी का राज्य छोड़ दीक्षा ली, इसके वर्णन में शास्त्रकार अलंकार से कहते हैं कि हे नाथ! आपके वियोग में यह पृथ्वी उदास होकर रो रही है। यह पृथ्वी आपके वियोग से अनाथ हो गई। अत: पानी के प्रवाह के छल से कलकल आवाज करके रो रही है। आकाश में बादल दीख पड़ते हैं, वे ऐसा सूचित करते हैं कि मोक्ष के पूर्व आपने ध्यानाग्नि के द्वारा जो कर्मरूपी ईंधन जलाया था उसके धुँआ के ढेर ही आकाश में उड़ रहे हैं। देखो! जहाँ देखते हैं वहाँ भगवान के भक्त को भगवान की वीतराग दशा ही याद आती है।

श्री कुन्दकुन्दाचार्य को जब इस भरतक्षेत्र में साक्षात् केवलज्ञानी भगवान का विरह लगा तब उस मुनिदेह सहित श्री सीमंधरनाथ के साक्षात् दर्शन करने के लिये विदेहक्षेत्र पधारे। अंदर

(अंतरंग) की अपनी सर्वज्ञदशा के विरह में संतजन चैतन्य में लीन होकर उसको सिद्ध करते हैं। आत्मा में अपार शक्ति है, उसमें से सर्वज्ञपद प्रगट हो सकता है। उस सर्वज्ञपद की भावना भाने योग्य है।

सर्वभाव ज्ञाता दृष्टा सह शुद्धता
कृतकृत्य प्रभु वीर्य अनंत प्रकाश जो
अपूर्व अवसर ऐसा कब सु आयेगा।

ऐसी अपूर्व दशा सादि-अनंत और अक्षय अनंत सुख दशा को साधकर अनंत सुख में विराजमान हुए। मुनि होकर भगवान ने क्या किया कि अंतरंग में चैतन्यस्वरूप में लीनता करके केवलज्ञान साधा, ऐसे आत्मा को पहचानकर हरेक मोक्षार्थी जीव को उसकी भावना भाने योग्य है।

अंतर्मुहूर्त में आत्मा को साधने की बात

प्रश्नः—अनेक जीवों ने एक अंतर्मुहूर्त में आत्मा को साध लिया है, तो हम भी बाद में एक अंतर्मुहूर्त में आत्मा को साध लेंगे, अभी तो दूसरा कर लें!

उत्तरः—भाई एक अंतर्मुहूर्त में आत्मा को साध लेने की जिसकी तैयारी हो उसको उसका कितना प्रेम होगा? 'अभी दूसरा कर लूँ और आत्मा का बाद में करूँगा'—ऐसा भाव उसका आता ही नहीं। 'आत्मा का बाद में करूँगा और अभी दूसरा कर लूँ' इसका अर्थ यह हुआ कि उसको आत्मा से ज्यादा दूसरा प्रिय है, स्वभाव के कार्य से भी ज्यादा परभाव के कार्य का प्रेम उसको है। जिसको जिस कार्य की अत्यंत आवश्यकता प्रतीत हो उसको वह पहले करता है, उसमें अवधि निश्चित नहीं करता; और जिसकी आवश्यकता न हो वह काम बाद में करता है, उसमें वादा करता है। आत्मा की पहिचान का जिसने सही भाव जागृत किया उसको उद्यम (पुरुषार्थ) आत्मा की ओर तुरंत झुके बिना नहीं रहता। आचार्यदेव बारम्बार कहते हैं कि आज ही आत्मा का अनुभव करो... तत्काल आत्मा का अनुभव करो। कभी इसप्रकार नहीं कहा कि 'यह बाद में करना' बाद में करना ऐसा कहे तो इसका अर्थ यह हुआ कि वर्तमान में उसको आत्मा का सच्चा प्रेम अथवा रुचि प्रगट नहीं हुई—ऐसा जीव अंतर्मुहूर्त में आत्मा को कहाँ से साध सकेगा?—हाँ, जिसको आत्मा की सच्ची लगन और प्रेम अंतर में जागृत हुआ वह अंतर के प्रयत्न से अंतर्मुहूर्त में भी आत्मा का अनुभव कर सकता है। परंतु इसप्रकार के आत्मा की अंतर की तैयारी कोई अलग ही होती है।

स्वभाव के अनुभवशील एवं विभाव के क्षयकरणशील ऐसे

शुद्धात्मा का अनुभव करो!

कलश टीका के प्रवचनों में स्वानुभव के वर्णन द्वारा अध्यात्मरस के कलश भर-भरकर पूज्य गुरुदेव ने मुमुक्षुओं को पिलाये हैं। जिसप्रकार खीर में विष शोभा नहीं देता, उसीप्रकार चैतन्य के स्वानुभव में विकल्प की शोभा नहीं है। अत्यंत सुंदर चैतन्यवस्तु... वह तो स्वानुभव से ही शोभा देती है। ऐसे स्वानुभव की बात सुनते हुए मुमुक्षु को उसका उत्साह जागृत होता है और वीर्योल्लास विकल्प से हटकर स्वानुभव की ओर ढलता है। वह अनुभवदशा कैसी है—उसका सुंदर रोमांचकारी वर्णन।

शुद्धात्मा के अनुभव काल में कैसी स्थिति होती है-वह कहते हैं—

उदयति न नयश्रीरस्तमेति प्रमाणं
क्वचिदपि च न विद्मो याति निक्षेपचक्रम।
किमपरमभिदध्मो धाम्नि सर्वंकषेस्मिन्
अनुभवमुपयाते भाति न द्वैतमेव ॥९॥

चैतन्यधाम जो स्वयंसिद्ध वस्तु उसके अनुभव के प्रत्यक्ष स्वाद में कोई विकल्प शोभा नहीं देते। अहा, स्वानुभूति का जो अतीन्द्रिय आनंद, उसमें विकल्प की आकुलता शोभा नहीं देती। स्वादिष्ट मीठी खीर में क्या विष की बूँद शोभा देगी?—नहीं; उसीप्रकार चैतन्य की अनुभूति के आनंद का जो मीठा स्वाद, उसमें विकल्प का आकुलतारूपी विष एकमेक नहीं होता। विकल्परहित आनंद, रागरहित आनंद अर्थात् शुद्ध आत्मा का आनंद क्या वस्तु है उसकी जीवों को खबर नहीं है। सम्यक्त्व के साथ अविनाभूत ऐसे इस परम आनंद का स्वाद सम्यग्दृष्टि को ही होता है, मिथ्यादृष्टि को इस आनंद की गंध भी नहीं होती वह तो विकल्प के ही आनंद में लीन हो रहा है। विकल्प वह शोभायमान वस्तु नहीं है, शोभायमान वस्तु तो चैतन्य का अतीन्द्रिय आनंद है; उस आनंद के समाने विकल्प शोभा नहीं देता। जिसप्रकार अत्यंत

सुंदर वस्तु के निकट खराब वस्तु शोभा नहीं देती, जिसप्रकार चक्रवर्ती के सिंहासन पर साथ में भिखारी शोभा नहीं देता, उसीप्रकार चैतन्य के स्वानुभव का अत्यंत सुंदर आनंद कि जो आनंद चक्रवर्ती या इन्द्र के वैभव में भी नहीं है, उस आनंदधाम के साथ अशुचिरूप विकल्प शोभा नहीं देता अर्थात् स्वानुभव में वह विकल्प होता ही नहीं। अरे, अनुभव के साथ जो विकल्प शोभा नहीं देता उस विकल्प का अवलंबन लेकर अनुभव करना चाहे उसे तो स्वानुभव के स्वरूप की ही खबर नहीं है। यह अनुभव पर की सहायता से रहित है; विकल्प की भी सहायता उसमें नहीं है। अनुभवदशा के समय वचन और विकल्प सहज ही रुक जाते हैं... उपयोग बाह्य से हटकर अंतरोन्मुख हो गया है और आनंद का अनुभव करने में ही मग्न है।

आनंदस्वभाव में उपयोग की एकता एवं विकल्प से उपयोग की प्रथक्ता का नाम निर्विकल्पता है; ऐसी निर्विकल्पता में अतीन्द्रिय आनंद का उपभोग होता है। ऐसे अनुभवकाल में विकल्प नहीं होता, इसलिये कहा है कि वहाँ विकल्प शोभा नहीं देते।

अहा, सुंदर चैतन्यवस्तु की शोभा तो स्वानुभव से ही है, कहीं विकल्प से उसको शोभा नहीं है। चैतन्य का स्वानुभव पर की सहायता से निरपेक्ष है। विकल्प की सहायता लेने जाये तो शुद्धात्मा अनुभव में नहीं आता। शुद्धात्मा कहता है कि—जहाँ मैं वहाँ विकल्प नहीं। स्वानुभव प्रत्यक्ष ज्ञानरूप है और सम्यक्त्व उसके साथ अविनाभावी है।

अहा, ऐसी स्वानुभव की बात सुनते ही मुमुक्षु को पहले तो उसका उत्साह जागृत होता है... उस की महिमा आती है और विकल्प की महिमा उड़ जाती है। इसलिये उसका वीर्य का उल्लास विकल्प से हटकर स्वानुभव की ओर ढलता है। परंतु प्रथम तो जिसे स्वानुभव की बात ही न रुचे उसका पुरुषार्थ स्वानुभव की ओर कब ढलेगा?

अरे! भगवान तीर्थंकरदेव की सभा में ऐसी स्वानुभव की बात इन्द्र भी उत्साहपूर्वक सुनते हैं और साथ ही सिंह बाघ जैसे कोई तिर्यंच भी यह बात सुनकर अंतर में उतरकर स्वानुभव कर लेते हैं। देखो भगवान महावीर के जीव को... सिंह पर्याय में मुनियों ने सम्यक्त्व का उपाय सुनाया और कहा कि "अरे जीव! तूं भरतक्षेत्र की चौबीसी का चरम तीर्थंकर होनेवाला है ऐसा हमने भगवान की वाणी में सुना है, और यह तू क्या कर रहा है, तू ऐसे क्रूरभाव में पड़ा है। अरे, अपना निजपद सम्हाल... और सम्यक्त्व ग्रहण कर" मुनि के वचन सुनते ही सिंह का आत्मा जाग उठा... कि अरे! मुझे देखकर तो मनुष्य भागते हैं, उसके बदले

यह तो ऊपर से उतरकर मेरे सामने खड़े हैं और मुझे उपदेश देकर निजपद बतला रहे हैं। ऐसा समझकर टुकुर-टुकुर मुनियों की ओर देखने लगा... आँखों से आँसू की धारा के साथ मिथ्यात्व भी बाहर निकल गया और वह सिंह सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ। जैसा निर्विकल्प अनुभव यहाँ समयसार में कहा है वैसा ही निर्विकल्प अनुभव उस सिंह ने प्राप्त किया। ऐसे तो असंख्यात तिर्यंचों ने निर्विकल्प अनुभव प्राप्त यिका है और उससे भी ऊँचे चढ़कर पाँचवीं भूमिका प्राप्त की है। असंख्यात तिर्यंचों असंख्यात देवों तथा असंख्यात नारकी जीवों ने भी शुद्ध आत्मा के निर्विकल्प अनुभव प्राप्त किया है।

कैसा है यह अनुभव ? पर की सहायता से अत्यंत निरपेक्ष है। पर अर्थात् विकल्प की भी सहायता स्वानुभव में नहीं है। ऐसा अनुभव सो मोक्षमार्ग है और उसमें रत्नत्रय का समावेश होता है...

अनुभव चिन्तामणि रतन, अनुभव है रसकूप;
अनुभव मारग मोक्ष का, अनुभव मोक्षस्वरूप।

अहो, अनुभव में तो अतीन्द्रिय अमृत का समुद्र है। जिसप्रकार चिंतामणि इच्छित पदार्थ देता है—क्या देता है ?—बाह्य पदार्थ; उसीप्रकार यह चैतन्य के अनुभवरूप चिंतामणि ऐसा है कि उसे हाथ में लेकर चिंतवन करने से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र केवलज्ञान-मोक्ष सब कुछ देता है। यह अनुभव अमृतरस का कूप है कि जिसका स्वाद चखने से आत्मा अमर हो जाता है। जगत के समस्त स्वाद से अनुभव के अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद भिन्न है। ऐसा स्वानुभव ही मोक्ष का मार्ग है और वह स्वयं मोक्षस्वरूप है। विकल्प तो सब अनुभव से बाह्य हैं, परवस्तु जैसे हैं। इस स्वानुभव में विकल्प की या किसी अन्य की अपेक्षा नहीं है, पर से तथा विकल्प से अत्यंत निरपेक्ष-सर्वथा निरपेक्ष, पर से अत्यंत उदासीन यह अनुभव प्रत्यक्ष ज्ञानगम्य है। मति-श्रुतज्ञान में भी स्वभावोन्मुखता के समय प्रत्यक्षपना-अतीन्द्रियपना है। ऐसा विशेषज्ञान सो अनुभव है और ऐसे अनुभव के साथ सम्यक्त्व सदा होता है। सम्यग्दृष्टि को ही ऐसा अनुभव होता है, मिथ्यादृष्टि को ऐसा अनुभव नहीं होता-ऐसा नियम है।

कोई कहे कि निर्विकल्प अनुभव तो कभी हुआ नहीं है परंतु सम्यक्त्व है, तो ऐसा नहीं हो सकता। ऐसा निर्विकल्प अनुभव हो तभी सम्यक्त्व प्रगट होता है। ऐसे अनुभव द्वारा जीव स्वयं अपने शुद्ध स्वरूप के स्वाद का प्रत्यक्षरूप से आस्वादन करता है, और स्वरूप के ऐसे

आस्वादन सहित उसकी जो प्रतीति हुई वही सम्यग्दर्शन है।

कोई कहे कि सम्यक्त्व नहीं है किन्तु आत्मा का अनुभव कभी कभी हो जाता है, तो उसकी बात मिथ्या है। अनुभव कभी सम्यक्त्व के बिना होता नहीं। शुभाशुभ भाव वह मलिनता है आस्रव तत्त्व है, वह जीवतत्त्व से बाह्य है-भिन्न है। स्वानुभव में जीव स्वयं सर्व विभावों से भिन्न होकर अपने शुद्ध स्वरूप को ही आस्वाद में लेता है। अनुभवरूप पर्याय को जीव तत्त्व के साथ अभेद करके कहा है। कि जीव स्वयं अनुभवरस का आस्वाद करता है—अनुभव के समय द्रव्य-पर्याय के भेद कहाँ हैं।

जिसप्रकार सूर्य से अंधकार भिन्न है, उसीप्रकार चैतन्य के अनुभव से विकल्प (शुभाशुभ रागादि) भिन्न हैं। चैतन्य का अनुभव तो सूर्य के समान प्रकाशमान है, विकल्प तो अंधकाररूप है—ऐसा अनुभव आठ वर्ष की बालिका भी कर सकती है। मेंढ़क भी कर सकते हैं; असंख्यात तिर्यंच पशु-नारकी-और देवों को भी ऐसा अनुभव है।

मति-श्रुतज्ञान पर को जानने में परोक्ष है; किंतु स्वसंवेदन के काल में तो इन्द्रिय तथा मन से छूटकर प्रत्यक्ष हुआ है। अनुभव के काल में वचन व्यापार नहीं है, विकल्प नहीं है। ऐसे अनुभव में जीव तो प्रत्यक्ष अनुभवशील है, और सर्व विकल्पों का क्षयकरणशील है। इसप्रकार अस्ति-नास्ति दोनों पक्ष जान लिये। इसप्रकार ज्ञान अंतर्मुख हुआ तब वह जीव स्वरूप का अनुभवशील अर्थात् शुद्ध स्वरूप का अनुभव करना ही जिसका स्वभाव है, और क्षयकरणशील अर्थात् सर्व विभावों का क्षय करने का जिसका स्वभाव है-ऐसी शुद्ध जीववस्तु है; एक सूक्ष्म विकल्पमात्र के व्यवहार को भी अनुभव में रहने दे ऐसा जीव का स्वभाव नहीं है, किंतु संपर्क स्वभाव को अनुभव में ग्रहण करे और सर्व परभावों को बाहर निकाल दे-ऐसा स्वभाव है।

अरे, जो वीर होकर आत्मा का अनुभव करने के लिये आया है, उसका पुरुषार्थ छुप नहीं सकता; सूर्य कहीं आवरण से ढंका जा सकता है ? शुभाशुभ-राग-विकल्प को उत्पन्न करे उसका ग्रहण-त्याग या रक्षण करे ऐसा आत्मा का स्वभाव नहीं है। किन्तु सर्व विभावरूप विकल्पों का क्षय करके चैतन्य को साक्षात् अनुभव में ले ऐसा स्वभाव है। ऐसे स्वभाव को अनुभव में ले तब जीव धर्मी होता है।

जिसप्रकार सूर्य का स्वभाव अंधकार को नष्ट करने का है, किंतु रक्षण करने का नहीं है,

उसीप्रकार चैतन्य के अनुभवरूप जो सूर्य उसका स्वभाव सर्व विकल्प को तोड़ने का है, किंतु रक्षण करने का नहीं है। चैतन्य वस्तु ही ऐसे स्वभाववाली है कि—उसकी अनुभूति करते ही स्वभाव का अनुभव हो और विकार का क्षय करे अर्थात् कोई राग के अवलंबन द्वारा चैतन्य तत्त्व का अनुभव करना चाहे तो वह नहीं हो सकता। जो वस्तु के स्वभाव में नहीं है—उसके द्वारा वस्तु का अनुभव कैसे हो ? और वस्तुस्वभाव के अनुभव द्वारा यदि विकार का नाश न हो तो विकार को नष्ट करने का दूसरा कोई उपाय रहता नहीं है। वस्तुस्वभाव के अनुभव में विकार की उत्पत्ति नहीं होती; जिसप्रकार सूर्य में से अंधकार उत्पन्न नहीं होता।

तथा विशेषता यह है कि—जिसप्रकार सूर्य में अंधकार का स्वभाव से ही अभाव है। अत: उसमें अंधकार है ही नहीं कि जिसको हटाना पड़े। उसीप्रकार स्वानुभवरूप चैतन्य सूर्य में विकल्परूप अंधकार का स्वभाव से ही अभाव है, स्वानुभव काल में विकल्प है ही नहीं कि जिसे नष्ट करना पड़े। अनुभव का भाव और विकल्प का भाव दोनों भिन्न-भिन्न ही हैं। प्रकाश-पुंज सूर्य और अंधकार में जिसप्रकार परस्पर कभी एकता नहीं है, उसीप्रकार ज्ञान का पुंज स्वानुभव और विकल्प की आकुलता उन दोनों में कभी एकता नहीं है।—ऐसी निर्विकल्पता का अनुभव सम्यग्दर्शन में चौथे गुणस्थान से ही होता है।

प्रश्न—स्वानुभव में बुद्धिपूर्वक विकल्प तो होते हैं न ?

उत्तर—वह विकल्प विकल्प में है, स्वानुभव का जो भाव है, उसमें विकल्प नहीं है। विकल्प और स्वानुभव वह दोनों वस्तुऐं अलग-अलग ही हैं। स्वानुभव के काल में अबुद्धिपूर्वक विकल्प है, वह ठीक हे, किंतु स्वानुभव के भाव में विकल्प का भाव नहीं है। जिसप्रकार जगत में कहीं अन्यत्र अंधकार हो तो वह कहीं सूर्य में नहीं है, सूर्य से तो अंधेरा भिन्न ही है; सूर्य में अंधकार नहीं है उसीप्रकार स्वानुभूति में विकल्प नहीं है। यहाँ प्रश्नकार कहता है कि—अनुभव होने पर कोई विकल्प शेष रहता है या जिनका नाम विकल्प है वे सभी विकल्प मिट जाते हैं ? अबुद्धिपूर्वक के विकल्प तो अनुभव में हैं या नहीं ? उसका उत्तर इसप्रकार है—सभी विकल्प मिट जाते हैं; स्वानुभव में एक भी विकल्प नहीं रहता।

हाँ, भिन्न विकल्प अबुद्धिपूर्वक हैं, उनका भी अनुभव के काल में लक्ष्य नहीं है, उपयोग तो अतीन्द्रिय आनंद के वेदन में ही लगा हुआ है, उस वेदन में कहीं विकल्प का प्रवेश नहीं है। आनंद के वेदन में विकल्प को देखता ही कौन है ? इससे कहा है कि—स्वानुभव के काल में सभी विकल्प कहाँ गये वह भी हम नहीं जानते। स्वानुभवरूप प्रगट उपयोग होने पर

प्रमाण-नय-निक्षेप भी झूठे (अभूतार्थ) हैं। वहाँ रागादि विकल्प की तो क्या बात? प्रथम प्रमाण-नय-निक्षेप द्वारा जिस वस्तु स्वरूप का निर्णय किया था वह कहीं झूठा नहीं है, किंतु अनुभव के पूर्व ऐसे प्रमाण-नयादि के विकल्प थे वे अब साक्षात् अनुभव के समय छूट गये, उस अपेक्षा प्रमाणनयादि भेदों को झूठा अर्थात् अभूतार्थ कहा है, व्यवहारनय को 'अभूतार्थ' बतलाने के लिये 'झूठा' शब्द का उपयोग किया है।

परमार्थ में आश्रय करने योग्य नहीं है, इसलिये व्यवहारनय अभूतार्थ कहा है।

प्रमाणनय निक्षेप जो प्रथम भूमिका में स्वरूप का निर्णय करने में साधक थे, उनके विकल्प भी अनुभव में बाधक हैं, तो वहाँ राग की तो क्या कथा? नय-प्रमाणादि के विकल्प में रुकने से भी स्वानुभव नहीं होता, तो दूसरे स्थूल राग की तो क्या बात! वह तो अनुभव में 'असत्' है ही। शुद्धात्मा का जो स्वरूप नहीं वे सभी भाव स्वानुभव से बाह्य हैं—अर्थात् अभूतार्थ हैं, झूठे हैं। 'ववहारो अभूयत्थो' अर्थात् सभी व्यवहार अभूतार्थ है जो समयसार गाथा ११ में कहा है उसी कथन को यहाँ 'झूठ' शब्द द्वारा स्पष्ट किया है। अनुभव के भाव में समस्त विकल्पों का अभाव बतलाने के लिए उसे 'झूठा' कहा है। दूसरे रागादि भाव तो अनुभव में नहीं हैं, वह तो जीव तत्त्व से कहीं दूर हैं और भीतर जो नवतत्त्व संबंधी या आत्मतत्त्व संबंधी सूक्ष्म विकल्प है, वह भी जीवस्वरूप के अनुभव से बाहर है। 'प्रमाण के द्वारा आत्मा ऐसा है, शुद्धनय से ऐसा है उसके द्रव्य-गुण-पर्याय ऐसे हैं, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य ऐसा है'—इसप्रकार विचार-काल में जो विकल्प थे तब तक शुद्ध आत्मा साक्षात् अनुभव में नहीं आया था, और जहाँ उपयोग को राग से हटाकर अंतरस्वरूप में झुकाकर उसका साक्षात्-प्रत्यक्ष अनुभव किया वहाँ वे कोई विकल्प नहीं रहे, वे विकल्प अभूतार्थ होने से शुद्ध वस्तु के अनुभव में उनका प्रवेश नहीं हुआ। शुद्ध वस्तु में तो विकल्प नहीं है, और उसके अनुभवरूप पर्याय में भी विकल्प नहीं है।—ऐसी अनुभवदशा के बल द्वारा साधक जीव केवलज्ञान प्रगट करेगा। बीच में विकल्प आयेंगे उनके द्वारा कहीं केवलज्ञान नहीं होगा; मोक्ष का मार्ग तो शूरवीरों का है; जो विकल्प में रुक जाये वह ऐसे मार्ग को नहीं साध सकता।

एकरूप जीववस्तु को अनेक भेद द्वारा लक्ष्य में लेने पर तो विकल्प उत्पन्न होते हैं; उसमें वस्तु का अनुभव नहीं है अतः वे झूठे हैं। उन सर्व विकल्पों को झूठ अर्थात् अभूतार्थ समझकर उनका लक्ष्य छोड़ने पर निर्विकल्प उपयोग में वस्तु का जो स्वाद आता है, उसका नाम अनुभव है। इस कलश पर से पंडित श्री बनारसीदासजी ने समयसार नाटक में कहा है कि—

वस्तु विचारत ध्यावतें मन पावे विश्राम,
रस स्वादत सुख ऊपजे अनुभव याको नाम।

वस्तु को यथावत् ध्यान में लेकर अनुभव करने पर मन के विकल्प विराम पा जाते हैं और चैतन्य के अतीन्द्रिय रस के अनुभव से परम सुख उत्पन्न होता है—ऐसी दशा का नाम अनुभव है। ऐसा अनुभव वह मोक्षमार्ग है। उस अनुभव में प्रमाणनय या निक्षेप के विकल्प नहीं हैं।

जीव अनादि से अपने को भूल रहा है। इसलिये अज्ञानी है; वह अपने शुद्धस्वरूप को जानता ही नहीं। अब जब वह अपने शुद्धस्वरूप की पहचान करने को तैयार हुआ तब गुणगुणी भेद द्वारा वस्तु स्वरूप को साधता है अर्थात् वस्तुस्वरूप का निर्णय करने में बीच में गुणगुणी के भेद आये बिना नहीं रहते; 'मैं नित्य हूँ, ज्ञानस्वरूप हूँ' इत्यादि विचार में भी गुणगुणी भेद हैं, वे बीच में आये बिना दूसरा कोई उपाय नहीं है। इसप्रकार प्रथम अवस्था में वह विकल्प विद्यमान होने पर भी साक्षात् अनुभव काल में तो वह झूठे हैं। स्वानुभव के समय वह विकल्प नहीं होते।

जीव अनादि से अपने अपराध से अज्ञानी है; जब वह भूतार्थ वस्तुस्वरूप साधने का इच्छुक हो तब प्रथम सर्वज्ञ वीतराग कथित मार्ग द्वारा प्रमाण-नय-निक्षेप द्वारा द्रव्य-गुण-पर्याय आदि के स्वरूप का विचार करे, गुणगुणी भेद से स्व-स्वरूप का निर्णय करे, हित-अहित क्या है, इत्यादि विचार में ऐसा भेद आये बिना नहीं रहता; अभेदवस्तु में भेद उत्पन्न करनेवाला इतना विकल्पि-व्यवहार आता ही है, किंतु उसे छोड़कर जब नय पक्षातिक्रांत भेद से भी अतिक्रांत होकर उपयोग को अंतर्मुख करे तब वस्तुस्वरूप का सच्चा अनुभव होता है। उस अनुभव के समय पूर्व के कोई विकल्प नहीं होते। सूक्ष्म से सूक्ष्म विकल्प भी ज्ञान से भिन्न है।—ऐसी भिन्नता के निर्णय में भी जिसे भूल हो, एक-दूसरे में मिश्रण करता हो-उसे शुद्ध वस्तु का अनुभव नहीं होता।

अहा, शुद्ध जीववस्तु का अनुभव बतलाकर अमृतचंद्राचार्य ने अमृत बहाया है। कलश में स्वानुभव का अद्भुत अमृत भरा है। जिसप्रकार तीर्थंकरदेव के जन्म कल्याणक के समय १००८ कलशों से इन्द्र भगवान का अभिषेक करते हैं, उसीप्रकार अमृतचंद्राचार्यदेव ने यहाँ २७८ कलशरूपी काव्य में अमृत भर-भरकर इस चैतन्य भगवान आत्मा का अभिषेक किया है। वाह! स्वानुभव के अमृतरस से आत्मा को स्नान कराया है। आत्मा को शुद्धस्वरूप में अंगीकार करके ऐसे अनुभवरस का पान करो।

अनुभूति से बाहर दूसरा मार्ग

नहीं... नहीं... नहीं

[समयसार कलश टीका-प्रवचन]

शुद्धात्मा की स्वानुभूतिरूप जो मोक्षमार्ग है, उसमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों समा जाते हैं। इनके द्वारा ही साध्यरूप शुद्ध आत्मा की सिद्धि होती है, इसके सिवाय दूसरे कोई भी उपाय से साध्य की सिद्धि नहीं होती। संत ऐसे मार्ग द्वारा आत्मा को सिद्ध करते-करते जगत् को निःशंकरूप से उसकी रीति बतलाते हैं कि आत्मा को सिद्ध करने का यही मार्ग है, दूसरा मार्ग नहीं... नहीं।

कथमपि समुपात्त त्रित्वमप्येकताया,
अपतितमिदमात्म ज्योतिरुद्गच्छदच्छम्।
सततमनुभवामोऽनंत चैतन्य चिह्नं,
न खलु न खलु यस्मादन्यथा साध्यसिद्धिः ॥२०॥

व्यवहार से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ऐसा तीनपना स्वीकार किया होने पर भी आत्मज्योति ने स्वयं की एकता नहीं छोड़ी; अनंत चैतन्य चिह्नवाली इस आत्मज्योति को आचार्यदेव अनुभव करते हैं। स्वयं निःशंक कहते हैं कि हम ऐसी आत्मज्योति को सतत् अनुभव करते हैं, क्योंकि इसके अनुभव से ही साध्य की सिद्धि है। अनुभूति से बाहर दूसरे किसी मार्ग से साध्य की सिद्धि निश्चित नहीं... नहीं।

शुद्धात्मा का अनुभव वही मोक्षमार्ग है। उसके द्वारा ही साध्य की सिद्धि है, इसके सिवाय दूसरे किसी प्रकार से साध्य की सिद्धि नहीं होती-इसप्रकार मोक्षमार्ग का नियम बताया।

फिर कहते हैं कि 'हम निरंतर ऐसे चैतन्यप्रकाश को अनुभव करते हैं;' अर्थात् स्वयं का उदाहरण देकर दूसरे मुमुक्षुओं को भी उसकी प्रेरणा दी कि हे मुमुक्षुओं! तुम भी ऐसे स्वभाव का ही अनुभव करो। हम ऐसे अनुभव से मोक्षमार्ग को सिद्ध कर रहे हैं और तुम भी ऐसा ही अनुभव करो।—इसके सिवाय किसी अन्य प्रकार से साध्य की सिद्धि नहीं... ही नहीं।

देखो, यह मोक्षमार्ग सिद्ध करने की स्पष्ट रीति। एक ही रीति है, दूसरी कोई रीति नहीं।

कैसी रीति ? कि शुद्ध चैतन्य ज्योतिरूप आत्मा का अनुभव करना यही मोक्ष को सिद्ध करने की रीति है। इस अनुभव सिवाय दूसरे किसी उपाय द्वारा (राग द्वारा, व्यवहार द्वारा) मोक्षमार्ग सिद्ध नहीं होता।

शुद्ध चैतन्यप्रकाशी आत्मा है, वह राग के साथ तन्मय नहीं, अर्थात् उसका अनुभव राग से भिन्न है। आत्मा की जो अनुभूति मोक्ष की साधक है, वह तो निर्मल चैतन्यभावरूप से ही परिणमन करती है, वह रागरूप से परिणमन नहीं करती, उसका परिणमन चैतन्य तेज से भरा हुआ है। उस परिणमन में कुछ मलिनता नहीं आ जाती।—ऐसी दशा का नाम 'मोक्षमार्ग' है।

अनुभव में आती चैतन्य ज्योति अनंत चैतन्य चिह्नरूप है; स्वानुभूतिरूप ज्ञान भी अति-बहुत सामर्थ्यवाला है, अखण्ड चैतन्य स्वभाव को स्वानुभव में ले लेने की महान शक्ति इसमें ही है। इसके सिवाय राग में अथवा इन्द्रियज्ञान में ऐसी शक्ति नहीं।—इसलिये ऐसे ज्ञान द्वारा स्वानुभव से शुद्धात्मा का प्रत्यक्ष आस्वाद लेना-यह साध्य की सिद्धि का उपाय है।

आशंका—आपने तो स्वानुभव पर ही विशेष जोर देकर, उसका ही दृढ़रूप से बारंबार उपदेश दिया। पुनः पुनः इसकी ही महिमा कही (की), उसका क्या कारण है ?

उत्तर—भाई, इस स्वानुभव से ही साध्य की सिद्धि होती है—'न खलु न खलु यस्मादन्यथा साध्य सिद्धिः'—इसके सिवाय दूसरे किसी उपाय से साध्यसिद्धि नहीं होती। इसलिये स्वानुभव ही मुख्य वस्तु है। जैसा शुद्धस्वरूप है वैसा ही उसका शुद्ध अनुभव करने से वह शुद्धरूप से प्रगट होता है। आत्मा के मोक्ष की सिद्धि का यही उपाय है, दूसरा उपाय नहीं-यह निश्चित है। इसलिये मोक्षार्थी जीव निरन्तर ऐसे अनुभव का ही उद्यम करें।

एक शुद्ध अनुभव और दूसरा राग—ये दोनों कर्म के नाश का कारण हों—ऐसी मान्यता अज्ञानी की है। यहाँ स्पष्ट कहते हैं कि एक शुद्धात्म अनुभव सिवाय दूसरा कोई कर्म के नाश का कारण नहीं-नहीं-नही।

संत शुद्धात्मा के अनुभव का उपदेश देते हैं, क्योंकि उससे ही मोक्षमार्ग होता है।
जीवन में अभी ही ऐसा अनुभव करने जैसा है; अनुभव जीवन ही सच्चा जीवन है।
हे जीव ! अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद स्वानुभव में है, दूसरे कहीं भी वह आनंद नहीं।

विविध वचनामृत

(लेखांक-७)

[यह विभाग प्रवचनों में से तथा शास्त्रों में से तथा रात्रिचर्चा आदि से तैयार किया जाता है]

(१३१) श्रुतज्ञान के संस्कार द्वारा बुद्धि में अतिशय की प्राप्ति होती है।

जिसप्रकार चक्षुसंबंधी ज्ञान है, वह बाह्य दृश्यमान पदार्थों को ही देख सकता है, किंतु अपने मुख को नहीं देख सकता। हाँ, दर्पण के निमित्त से उसे भी किसी प्रकार देख लेता है; उसीप्रकार मतिज्ञान अर्थात् इन्द्रिय और मन के द्वारा होनेवाला ज्ञान वह यद्यपि दृष्ट-इन्द्रिय और मन के विषयरूप पदार्थों को ही जाननेवाला है, किन्तु शास्त्र अर्थात् आप्त भगवान के वचनरूपी दर्पण द्वारा उत्पन्न दृष्ट-अदृष्ट पदार्थ संबंधी ज्ञान से अतिशय पाकर उस इन्द्रिय और मन के अविषयरूप ऐसे अदृष्ट अतीन्द्रिय पदार्थ को भी प्रकाशित करता है।

(अनगार धर्मामृत, पृष्ठ ४२)

(१३२) विनय

ज्ञानादि की अपेक्षा वृद्ध ऐसे श्रेष्ठ पुरुषों के साथ उद्धतपने को छोड़कर जो विनयपने का व्यवहार करता है, उस पुरुष को लोकोत्तर महिमा सदा प्राप्त होती है। उच्च-श्रेष्ठ कुल पर्वतों का उल्लंघन समुद्र नहीं करता इसीलिये उन कुलाचल पर्वतों में से नित्य बहनेवाली गंगादिक नदियाँ उस समुद्र को पूर्ण करती हैं; उसीप्रकार उत्तम पुरुषों के हृदय में से बहनेवाली श्रुतज्ञानरूपी गंगा विनयवान शिष्य के समुद्र को उल्लसित करती है।

(१३३) सीताजी का संदेश

सीताजी को घोर वन में छोड़कर लौटते समय जब सारथी सीताजी से पूछता है कि आपको श्री रामचंद्रजी से कुछ कहना है ? तब स्तब्ध सीताजी सावधान होकर तुरंत धर्म का स्मरण करके कहती हैं कि—

'अरे हो वीरा! रामजीसुं कहिये यूं बात,
लोक निंदा वश हमको छांड़ी, धर्म न छोड़ो गात।

पाप कमाये सो हम पाये, तुम सुखी रहो दिन रात।
द्यानत सीता स्थिर मन कीनों, मंत्र जपे अवधात।'

(१३४) धन्य मुनिराज!

हे मोक्ष साधक मुनिवर आप आत्मा के ध्यान में झूल रहे हैं। भवभवों से वैराग्य धारण करके सिद्धपद की साधना कर रहे हैं। हे रत्नत्रय धारक प्रभुजी, आपका जीवन धन्य है!

(१३५) दिन दिन वृद्धिंगत

सब ओर से निवृत्त होकर आत्महित के विचार में रहना तथा आत्महित की ओर के परिणामों को दिन-प्रतिदिन बढ़ाना चाहिये। पुरुषार्थ के बिना एक भी दिन न जाये और शीघ्र आत्महित की साधना हो—ऐसा हे जीव तू प्रयन कर।

(१३६) शांत परिणाम होते ही....

जब अपने में शांत परिणाम होते हैं, तभी अनुभव में आता है कि अंतर में कितनी महिमा भरी हुई है? एक बार स्व का स्वाद चखने पर फिर परिणति नहीं नहीं घूमती।

(१३७) अतीव प्रयत्न करके

अतीव-अतीव भेदविज्ञान का प्रयत्न करके, सब जगह से परिणाम को हटाकर स्वतत्त्व में ही उपयोग लाने का अभ्यास करने की आवश्यकता है। मात्र उसका प्रेम दिखाने से उसकी प्राप्ति नहीं हो जायेगी, किंतु जब प्रेम को पराकाष्ठा होगी, एक उसके सिवा अन्य सब जगह से प्रेम हट जायेगा, तभी परिणाम स्व में आयेगा, और तभी स्व-तत्त्व की प्राप्ति होगी। वैसे तो परिणाम भी वही है, स्वतत्त्व भी वही है, प्राप्त होनेवाला वही है और प्राप्त करनेवाला भी वही है, किंतु यह दशा इतनी सहज है कि रागादिरूप कृत्रिमता उसमें किंचित् नहीं चल सकती। राग से वह दशा अस्पर्शित है और उसी दशा को हमें छूना है-उसरूप होना है।

(१३८) परावलम्बी मोक्षमार्ग नहीं है, मोक्षमार्ग स्वाश्रित है

अरे जीव! तेरी साधकदशा में-ज्ञानधारा में भी जितना परावलम्बीपन है, वह मोक्ष का कारण नहीं है, तो फिर सर्वथा परावलम्बी ऐसा राग तो मोक्षमार्ग का कारण कहाँ से होगा? अत: हे जीव! स्वाश्रित भाव को ही तू मोक्ष का कारण जान।

पराश्रित भावों के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप मोक्षमार्ग मानने में विरोध आता है, क्योंकि अज्ञानी को भी ऐसे पराश्रित ज्ञानादि होने पर उसे मोक्षमार्ग नहीं है। और ज्ञानी को ऊपर

की दशा में वैसा पराश्रित भाव न हो फिर भी मोक्षमार्ग होता है। इसलिये पराश्रित भाव में मोक्षमार्ग नहीं है। कदाचित् साधक को मोक्षमार्ग के साथ कुछ पराश्रित भाव हो तो भी उस पराश्रित भाव के आश्रय से कहीं वह मोक्षमार्ग नहीं है; मोक्षमार्ग तो शुद्ध आत्मा के ही आश्रय से है।

शुद्ध आत्मा ही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का आश्रय है। वह एकांत (अबाधित) नियम है। जहाँ शुद्धात्मा का आश्रय है वहाँ अवश्य मोक्षमार्ग है; जहाँ शुद्धात्मा का आश्रय नहीं है, वहाँ मोक्षमार्ग नहीं है। इसप्रकार मोक्षमार्ग स्वाश्रित ही है, पराश्रित नहीं है।

सुखी होने के लिये क्या किया जाये ?

[भाई! परद्रव्य का संबंध करने जायेगा उतना दुःखी होगा; अपना सुख तो तेरे स्वद्रव्य में है, इसलिये अनुभूति के द्वारा स्वद्रव्य में जा... इसमें ही सदा तन्मय प्रीतिवंत-संतुष्ट-तृप्त बन तो तुझे सुख होगा]

सुख का मार्ग या मोक्षमार्ग स्वद्रव्य के आश्रित है। निश्चयरत्नत्रय के साथ साधक को व्यवहाररत्नत्रय भी होता है। भेदरत्नत्रय अथवा व्यवहारत्नत्रय भी वासतव में मोक्षमार्गी जीव को ही होता है; अज्ञानी जीव को व्यवहाररत्नत्रय सचचा नहीं होता; व्यवहारश्रद्धा सच्ची तो तब कही जाये कि जब व्यवहार के अवलंबन को मोक्षमार्ग न माने; कारण कि-व्यवहार का अवलंबन वह मोक्षमार्ग नहीं है, किंतु उसका आलंबन छोड़कर परमार्थ का अवलंबन करना, वही मोक्षमार्ग है - ऐसा जाने तब तो व्यवहार श्रद्धा-ज्ञान सच्चे कहे जायेंगे। यह व्यवहार का विकल्प है, वह मोक्ष का साधन होगा ऐसा माननेवालों को तो व्यवहार-श्रद्धा भी सच्ची नहीं है।

परमार्थ-मोक्षमार्ग मात्र शुद्ध आत्मा के अवलंबन से है। शुद्ध सम्यग्दर्शन-ज्ञान-

चारित्ररूप परिणत आत्मा ही अभेदरूप मोक्षमार्ग है। व्यवहाररत्नत्रय का राग स्वयं कहीं मोक्षमार्गरूप परिणमित नहीं होता।

छहों द्रव्य का जो ज्ञातृत्व है, उसे व्यवहार से सम्यक्त्व का कारण कहा है। छह द्रव्य का स्वरूप सर्वज्ञ के सिवा दूसरों के मत में वास्तविक नहीं होता; अर्थात् छह द्रव्यों को जानने पर सर्वज्ञ की प्रतीति साथ ही साथ होती ही है। अर्थात् आत्मा के पूर्ण ज्ञान स्वभाव का उसमें स्वीकार आ जाता है। और जब अंतर्मुख होकर निर्विकल्परूप अपने स्वभाव को प्रतीति में लेता है, तब निश्चय सम्यक्त्व है और वह मोक्षमार्गरूप है।

निश्चयसम्यक्त्व तो वीतरागता का कारण है, तो फिर उस निश्चयसम्यक्त्व का कारण राग कैसे हो सकता है ? अपने स्वद्रव्य का सेवन ही तुझे सम्यक्त्वादि मोक्षमार्ग का कारण है। राग-पराश्रयरूप व्यवहार भूमिकानुसार निमित्त है, वह जाननेयोग्य है किंतु उस रागभाव के सेवने के द्वारा मोक्षमार्ग की प्राप्ति हो सकती नहीं यह नियम है।

जगत में छह द्रव्य है, उसे जानकर क्या करना ? कि पर के संबंध की रुचि और पराश्रय की भावना छोड़कर स्वद्रव्य जो निज शुद्धात्मा उसमें निर्मल श्रद्धा-ज्ञान लीनता द्वारा स्थित होने के अभ्यास के द्वारा मोक्षमार्ग साधना।

तू अपने स्वरूप से बाहर निकलकर जितना परद्रव्य का संबंध करेगा उतना ही तुझे दुख होगा। परद्रव्य-परक्षेत्र-परकाल और परभाव में से तुझे कुछ मिलेगा नहीं उनका संबंध करने में उपयोग लगाने से दु:खी ही होगा। अपना सुख तो अपने स्वद्रव्य में ही भरा है, इसलिये वह स्वद्रव्य का संबंध (उनको श्रद्धा-ज्ञान और लीनता) कर तो तुझे अपने सुख का अनुभव होगा। अज्ञानी मानता ही है कि शरीर है वह धर्म का साधन है, यहाँ आचार्यदेव कहते हैं कि शरीर का संबंध करना वह दु:ख है। अरे तू चैतन्यमूर्ति ! और यह शरीर तो सदा अचेतन-अजीव-जडु पुतला,... उसमें तेरा सुख कैसे हो सकता है ? तो क्या करना ? कि भेदज्ञान द्वारा अतीन्द्रिय ज्ञानमय आत्मा में ही जाना। हे जीव ! सुख बाहर में नहीं, सुख अंतर में है। अत: शाश्वत् सुखमय स्ववस्तु क्या है, उसे जान। तेरा मोक्षमार्ग अर्थात् तेरा सुख तेरे स्वद्रव्य के आश्रय से ही है। ऐसा जानकर आत्मानुभूति के द्वारा स्वद्रव्य में प्रवेशकर तो तुझे अतीन्द्रिय सुख होगा ही होगा। पर के आश्रय से तो आकुलता है, दु:ख है। अरे,... दु:ख क्यों है, और सुख कैसे हो ? उसकी भी जिसे खबर नहीं है, वह सुख का सच्चा उपाय कहाँ से करे ? और उसका दु:ख कैसे मिटे ?

(परमात्मप्रकाश प्रवचनों से)

आत्मा कैसे ज्ञात हो ?

[जिज्ञासु शिष्य के हृदय का प्रश्न; और आत्मानुभव की तीव्र लगन]

[परमात्मप्रकाश प्रवचन]

* आत्मा कैसे ज्ञात हो ?

  आत्मा की ओर से ज्ञान से आत्मा अनुभव में आता है।

* आत्मा की ओर का ज्ञान कैसा है ?

  आत्मा की ओर का ज्ञान राग रहित, वीतराग स्वसंवेदनरूप है।

* आत्मा कैसा है ?

  आत्मा देहादि से परे, विकल्पों से दूर सदा ज्ञानानंदस्वरूप है। जैसे सिद्ध भगवान हैं वैसे ही स्वभाव से परिपूर्ण आत्मा है। ऐसे आत्मस्वरूप का स्वसंवेदन करने पर ही आत्मा सम्यक्‌रूप से ज्ञात होता है। परोन्मुख या रागादि भावों से आत्मा अनुभव में नहीं आता।

प्रभाकर भट्ट अर्थात् आत्मज्ञान का जिज्ञासु शिष्य कहता है कि—हे स्वामी! जिस ज्ञान से यह आत्मा मुझे शीघ्र ज्ञात हो ऐसा ज्ञान मुझमें प्रकाशित कीजिये; इसके अतिरिक्त अन्य अनेक परभावों से या ज्ञातृत्व से मुझे कोई प्रयोजन नहीं है। मुझे अपने आत्मा का अनुभव हो इसके अतिरिक्त दूसरा कुछ मुझे नहीं चाहिये। इसलिये क्षणमात्र में वह अनुभव कैसे हो वह मुझे बतलाइये—

ज्ञानं प्रकाशय परमं मम किं अन्येन बहुना।
येन निजात्मा ज्ञायते स्वामिन एक क्षणेन॥१०४॥

आत्मा के ज्ञान की अनुभूति के सिवा समस्त बाह्य वृत्तियों का माहात्म्य जिसे उड़ ही गया है, अरे, बिना आत्मज्ञान के जीव को संसार में कहीं पर भी जरा भी सुख नहीं है। आनंद की प्राप्ति आत्मज्ञान के द्वारा ही होती है, इसप्रकार अंतर में विचार करके विनयपूर्वक गुरु के पास उसी की माँग करता है कि—हे स्वामी! मुझे दूसरे विकल्पों का कुछ प्रयोजन नहीं है, मुझे

तो आत्मज्ञान जिसप्रकार प्रगट हो वही उद्यम करना है। इसलिये शीघ्र आत्मज्ञान-स्वात्मानुभूति हो ऐसा उत्तम उपदेश दीजिये।

देखो, यह शिष्य की जिज्ञासा! जगत की दूसरी जिज्ञासा छोड़कर जिसे आत्मज्ञान की जिज्ञासा जगी उसके अंतर में से ऐसा प्रश्न उठता है; अर्थात् शुद्धात्मा के सिवा मुझे दूसरा कुछ भी सुहाता नहीं। एक ही लगन-रट लगी है कि मैं मेरी आत्मा को जान लूँ—अनुभव करूँ, और वह भी क्षणमात्र में जान सकूं—इसप्रकार तीव्र लगन है।

ऐसे आत्माभिलाषी शिष्य को समझाते हैं कि हे शिष्य जो ज्ञान है उसे ही तू आत्मा जान। आत्मा ज्ञान प्रमाण है। यहाँ 'ज्ञान' कहने पर उसमें रागादि परभाव न आवें; यह समस्त पदार्थों को जाननेवाला जो ज्ञान है, वह ज्ञान किसका है? ज्ञान में कौन व्यापक हो रहा है? ज्ञान में व्यापक जो पदार्थ वही आत्मा है, वही तू है। ज्ञान के साथ जिसे नित्य तन्मयता है वही आत्मा है ऐसा जान। 'ज्ञान' को लक्ष में लेने पर क्षणमात्र में आत्मा ज्ञात होता है, उसमें एकदम निराकुल शांति और अतीन्द्रिय आनंद का वेदन है। ज्ञान से भिन्न आत्मा नहीं है। रागरहित आत्मा अनुभव में आता है, किंतु ज्ञानरहित आत्मा कभी अनुभव में आता नहीं। इसप्रकार ज्ञान स्वरूप आत्मा एक क्षण में अंतर्दृष्टि से देखा जाता है। इसप्रकार ज्ञानस्वरूप स्वयं आत्मा अपसे ज्ञानस्वभाव के द्वारा अनुभव में आता है। ऐसा अनुभव अतीन्द्रिय आनंद सहित होता है। परभाव का अभ्यास छोड़कर स्वभाव के अभ्यास के द्वारा ऐसा अनुभव होता है। ज्ञान को परभाव से प्रथम श्रद्धा में भिन्न करे और प्रगट अनुभव करने के लिये ज्ञान को अंतरोन्मुख करने से क्षणमात्र में आत्मस्वभाव प्रगट अनुभव में आता ही है।

जिनमार्ग अत्यंत सरल है

सर्वज्ञ जिनेन्द्रों के मार्ग का अनुसरण करने से जीव का उद्धार होता है, और वह जीव जन्म-मरण रहित अविनाशी सुख से परिपूर्ण अमरपद जो नित्य शक्तिरूप था उसे प्रगटरूप में प्राप्त करता ही है। यह कोई क्लिष्ट मार्ग नहीं है; किंतु स्वाभाविक होने से विवेकवान पुरुषों के लिए यह अत्यंत सरल है। हे जीव! अंतरात्मा के द्वारा उसका ग्रहण करके तू सन्मार्ग हो!

श्री मानतुंगाचार्य विरचित

श्री भक्तामर स्तोत्र

प्रवचनकार श्री कानजीस्वामी अनुवादक—श्री बंशीधर शास्त्री, एम०ए०

[श्रावन सुदी ११, दिनांक १-९-५६]

श्रीमान् मानतुंगाचार्यदेव रचित श्री 'ऋषभजिन स्तुति' या 'भक्तामर स्तोत्र' महा अनुपम काव्य है, श्री आदिनाथ भगवान या ऋषभदेव प्रभु इस चौबीसी में प्रथम तीर्थंकर हुए हैं। आत्मस्वरूप जानकर पूर्व में तीसरे भव में तीर्थंकर नामकर्म अर्जित कर, फिर अंतिम भव में दीक्षा लेकर तीर्थंकर होते हैं। ऐसे अनेकों तीर्थंकर हुए हैं। मानतुंगाचार्य ने इस सातिशय दिव्य एवं अद्भुत स्तुति में निश्चय अध्यात्मशैली भी अपनाई है। बहुत से जीव सांसारिक फल की आशा से इस स्तुति को करते हैं, वह व्यर्थ है। स्तुतिकार महापवित्र दिगम्बर भावलिंगी संत थे। वे हमेशा आत्मिक आनंद में रमण करते थे, फिर भी उन्हें छट्ठे गुणस्थान के काल में भक्ति का विकल्प आता था।

राजा भोज के समय में मानतुंग आचार्य हुए हैं। राजा काव्यकला और विद्या का बहुत प्रेमी था, कवि कालीदास उसकी मंडली में मुख्य था किंतु बहुत अभिमानी था। उस नगर में 'धनंजय' नामक जैन कवि स्याद्वाद का मर्मज्ञ था, नगर का एक सेठ अपने छोटे बच्चे को दरबार में ले गया। उसने कहा कि—यह 'नाममाला' पढ़ता है। राजा ने प्रश्न किया कि यह 'नाममाला' किसकी बनाई हुई है ? सेठ ने उत्तर दिया कि—जैन कवि धनंजय द्वारा बनाई हुई है। कालिदास कवि ने कालीदेवी की आराधना की थी, और पुण्य के उदय से वह प्रसन्न भी थी। कवि को यह रुचिकर न हुआ कि—एक बनिये के पास यह विद्या हो ! इसलिये कालिदास को द्वेष हुआ और उसने कहा कि—मेरे द्वारा रचित 'नाममंजरी' में से ही यह 'नाममाला' बनाई गई है। राजा ने कालीदास की 'नाममंजरी' मंगाई। तो ज्ञात हुआ कि धनंजय की नाममाला तो उससे सर्वथा स्वतंत्र रचना है। धनंजय और कालीदास में शास्त्रार्थ हुआ।

शास्त्रार्थ में धनंजय कवि जीतनेवाला था, तब कवि कालीदास अपनी पराजय से बचने के लिये बोला कि धनंजय तो मानतुंग के पास पढ़ता है; इसलिये मुझे इनसे चर्चा न कर, इसके

गुरु मानतुंग से चर्चा करनी है। राजा ने मानतुंग आचार्य को बुलाया किंतु विवाद की अनिच्छा से आचार्य नहीं आये। चार बार आदमी भेजे गये, तब भी वे नहीं आये तो पाँचवीं बार आदमी जाकर उन्हें पकड़कर ले आये। वे उसको उपसर्ग मानकर मोन रहे-समता में रहे, क्योंकि—उपसर्ग अवस्था में मुनि उपदेश नहीं दे सकते थे। कालिदास ने राजा को कहा कि 'यह तो महा मूर्ख है जो बार-बार कहने पर भी नहीं बोलता' आचार्य अपने समताभाव में मौनपूर्वक खड़े रहे। इससे राजा को भी गुस्सा आ गया और आचार्य को कमरे में बन्द कर ४८ ताले लगावा दिये। तीसरे दिन आचार्य ने विचार किया, 'अहो! यह क्या स्थिति है। पवित्रता का यह विरोध'! उन्होंने ऋषभनाथ भगवान की स्तुतिरूप उत्कृष्ट भक्तिपूर्ण ४८ श्लोक बनाये। एक-एक श्लोक बोलने के साथ एक-एक ताला टूटता गया और मुनिराज बाहर आ गये। अनेक लोग संसार की अभिलाषा से इस 'भक्तामर स्तोत्र' का पाठ करते हैं, वह यथार्थ नहीं है।

आचार्य ने सहज भक्ति भाव से इसकी रचना की थी। मुनिराज के बाहर आते ही राजा का सिंहासन हिल गया। उसने कालिदास से पूछा 'यह क्या?' कालीदास ने कालीदेवी को बुलाया। वहीं जैनशासन की देवी चक्रेश्वरीदेवी ने कालीदेवी को पकड़कर जाने के लिये कहा, तब राजा और कालीदास ने क्षमा याचना की।

भक्ति गंगा की दिव्य धारा प्रवाहित करनेवाले संतों को धन्य है।

जैन शास्त्रों में ऐसे अनेक स्तवन हैं। श्री वादिराज सूरि मुनिराज ने 'एकीभावस्तोत्र' बनाया है। उनके शरीर में कोढ़ था, वे नगर बाहर रहते थे। नगर का एक सेठ उनका भक्त था। किसी ने राजा को शिकायत की कि—सेठ अपने कोढ़ी गुरु को छूकर राजदरबार में आता है और कोढ़ फैलाता है। राजा ने सेठ से पूछा, तब सेठ ने कहा कि नहीं! मेरे गुरु कोढ़ी नहीं हैं। राजा ने गुरु को देखने के लिये सुबह जाने को कहा। सेठ ने घबराकर मुनि से चर्चा की, वे निर्भय रहे, और बोले—मैं एकीभाव स्तोत्र बनाता हूँ जिसमें कहा है—'हे नाथ! हे प्रभु! आप तीन ज्ञानसहित, माता के पेट में (गर्भ में) आते हैं, तब उससे छह महीने पहले ही देवियाँ माता के शरीर को स्वच्छ और सुंदर बनाती हैं और नगरी को सुवर्णमय कर सुशोभित करते हैं। हे प्रभु!! हे प्रभु!! जैसे आपकी नगरी स्वर्णमय होती है, वैसे ही मैं अंतरंग अभेद सहित आपकी भक्ति करता हूँ, आपको अपने हृदय में स्थापित करता हूँ, फिर भी यह शरीर सोने का नहीं हो, ऐसा नहीं हो सकता। इसप्रकार उन्होंने पूर्ण पवित्रता को याद कर भगवान की बहुत स्तुति की।

स्तुति तो विकल्प का निमित्त है। पूर्व के पुण्योदय से कोढ़ मिट गया। राजा के पास शिकायत करनेवाला झूठा सिद्ध न हो, इसलिए अंगूठे पर कोढ़ का छोटा सा चिह्न रख लिया। राजा ने उनका निरोग शरीर और पवित्र दशा देखकर श्रद्धासह मुनि की वंदना की। पूर्व पुण्य के उदय से शरीर निरोग और सुंदर हुआ। प्रभु! मेरे एक वीतरागी स्वभाव का ही आदर है। तेरे चरण कमल मेरे ज्ञान में विराजें, फिर यह कोढ़वाला शरीर नहीं शोभे। मैं आत्मा हूँ, उसमें आप निवास करते हैं। राजा पवित्र मुनि के कोढ़ी शरीर को देखकर धर्मी की निंदा करेगा, इस विकल्प के निराकरण के लिए स्तुति करते हुये उनका शरीर परिवर्तित हो जाता है। मुनियों को इस लोक या परलोक के किसी भोग की इच्छा नहीं है, वे शुभराग के समय भक्ति करते हैं।

श्री समंतभद्र ने तीर्थंकर भगवान की २४ स्तुतियाँ की हैं। उनके 'भस्मक' रोग उग्ररूप से हो गया। गुरु ने आज्ञा दी कि तुम मुनि पद छोड़कर रोग की शांति न होने तक अव्रत अवस्था में रहो। महाराज शिवकोटि के नगर में शिव मंदिर में भोजन करने से रोग मिट जाता है। राजा उस देव को नमस्कार करने को कहता है। समंतभद्र दृढ़ श्रद्धावान थे। अतः उन्होंने कहा कि मेरा नमस्कार वीतरागदेव को ही होता है, रागी द्वेषी की प्रतिमा मेरी स्तवन नहीं झेल सकती और फट जायेगी। श्री समंतभद्र को नव तत्त्व सहित पुण्य का विश्वास था। राजा ने शिवपिंड को न फटने के लिए सांकल से बाँध दिया। समंतभद्र ने चौबीस स्तुति की रचना प्रारंभ की। उसमें 'चन्द्रप्रभु' की स्तुति की रचना प्रारंभ की तो उसमें चन्द्रप्रभ प्रभु की स्तुति करते समय शिवलिंग फटता है और चन्द्रप्रभु की प्रतिमा प्रगट होती है।

अपने कारणपरमात्मस्वरूप में अभेद भक्तिरूप स्वसन्मुखता है। व्यवहार में वीतराग देव के विनय के विषय में भक्त कहता है कि—यह भक्ति का फल है। हे प्रभु! आप ही सर्वज्ञ हैं और मैं सर्वज्ञ का भक्त! मेरे में सर्वज्ञ स्वभाव की शक्ति है, उसका भरोसा है। शुभराग से प्रेरित होकर कवि भावना करता है कि—

हरतां फरतां प्रगट प्रभु देखूं रे...
भारूं जीव्यूं सफल तब लेखूं रे।
मुक्तानंदनो नाथ विहारी रे
शुद्ध जीवन दोरी हमारी रे।

हे सर्वज्ञ परमात्मा! मैं आपका सेवक हूँ, तब पूर्ण साध्य को पाये बिना नहीं रह सकता। इसप्रकार आत्माभानवाले को भक्ति होती है।—

भक्ता-मरप्रणतमौलिमणिप्रभाणाम्
मुद्योतकं दलित पाप तमोवितानम्।
सम्यक् प्रणम्य जिनपाद युंगयुगादा-
वालम्बनं भवजले पततां जनानाम्॥१॥
यः संस्तुतः सकल वाङ्मय तत्त्वबोधा-
दुद्भूत बुद्धि पटुभिः सुरलोक नाथैः।
स्तोत्रैर्जगत्त्रिय चित्त हरै रुदारैः
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम्॥२॥

निश्चय से साधक और साध्य, भक्त और भगवानपना अपने में ही है।

निश्चय से अपने में ही भगवान और साधक भाव की अपेक्षा भक्त भी अपने में ही है।

जिनके भगवान 'देव' भक्त हैं, उन देवों में प्रमुख सौधर्म इन्द्र के ३२ लाख विमान हैं, द्वितीय ईशान इन्द्र के २८ लाख विमान हैं। ये इन्द्र भगवान के परम भक्त हैं। पूर्व भव में पुण्य के निषेध कर आत्मभान की भूमिका में जो पुण्य का बन्ध हुआ-उसके फलस्वरूप ३२ लाख विमानों आदि का संयोग मिला, तो भी सम्यग्दृष्टि जीव और इन्द्र को इन्द्र पद या उसकी संपदा का महात्म्य नहीं है। हे प्रभु! आपके पास केवलज्ञान है। ऋषभदेव भगवान वर्तमान चौबीसी में प्रथम तीर्थंकर हैं। 'प्रभु' आपको स्व-परप्रकाशक ज्ञान ज्योति प्रगट हुई है। वह वस्तुतः उसी की महत्ता है, पुण्य से प्राप्त ऋद्धि की कीमत नहीं है। इन्द्रों के ऋद्धियाँ बहुत होती है, फिर भी वे उनको अपना स्वरूप नहीं मानते। देवों की आयु मनुष्यों से असंख्य गुनी होती है, दो सागरों आदि की आयु होती है। फिर भी स्वर्ग में अधिक समय रहने से देव 'अमर' कहलाते हैं, ऐसे अमर देव भगवान की भक्ति करते हैं। उनका शरीर बहुत तेजवाला होता है। साधारण मनुष्य उस तेज की कल्पना भी नहीं कर सकता। उनके कान में मणि-रत्नों के कुंडल और सिर पर मुकुट होता है। ऐसे स्वर्ग लोक के स्वामी देव भगवान की भक्ति करते हैं।

तीर्थंकर का पुण्य और पवित्रता अनुपम और उत्कृष्ट है।

हे प्रभो! आप प्रथम तीर्थंकर हैं। हमें आत्मा का भान हुआ है। अब हमारी अधूरी दशा नहीं रहेगी। शुभविकल्प हुआ उससे भक्ति का ऐसा विकल्प राग है, किंतु अंतर में वीतरागतारूप निश्चय भक्ति-सहित राग है। स्वभाव में एकाग्रता पूर्ण होने पर सिद्धदशा पाऊँगा, तब आठ कर्मों की १४८ प्रकृतियाँ भी छूट जावेंगी। देव इसप्रकार स्तुति करते हैं। ऐसी

स्तुति करते हुए सिर एवं मुकुट भी झुकते हैं। जिनके मुकुट के मणि की प्रभा दिव्य होती है। यह उन देवों के पुण्य का महात्म्य नहीं है, अपितु आपकी महती पवित्रता का माहात्म्य बताने के लिये यह स्तुति इसप्रकार की गई है। हे प्रभु! इन्द्रों के मुकुट की शोभा नहीं है, क्योंकि उनकी मणि के प्रकाशक तो आप हैं। तीर्थंकर के शरीर में उत्कृष्ट तेज है, उनके नखों से परम उज्ज्वल कांतिदार किरणें प्रगट होती हैं, उनसे इन्द्रों के मुकुट की प्रभा ढक जाती है। तीर्थंकर भगवान के चरणों के नख इतने सुंदर होते हैं कि मुकुट सहित देव उनके चरणों में झुकते हैं, उन चरणों के नख की शोभा से देवों के मुकुट सुशोभित होते हैं।

नख के रजकण इतने सुंदर हुए हैं कि उनकी किरणों से मुकुट सुशोभित होते हैं, अतः आपका पुण्य अचिंत्य एवं अनुपम है, उसकी क्या बात? हे प्रभु तुम्हारी पवित्रता भी अनुपम है। मुनि भी भक्ति करते हैं कि 'अपनी पूर्ण पवित्रता को अंतरंग में साधा है।.....

पूर्व पुण्योपार्जित तीर्थंकर नामकर्मप्रकृति के उदय से जो शरीर प्राप्त हुआ है, वह बहुत सुंदर है। तीर्थंकर का शरीर कामदेव के शरीर से भी अधिक सुंदर होता है। श्री नेमिनाथ भगवान संसारदशा में भी महा सुंदर शरीरवाले थे। हे नाथ! आपके नख देवाधिपति इन्द्र और उनके मुकुटों को सुशोभित करनेवाले हैं, तब आपके शरीर की क्या बात? पवित्रता के साथ पुण्य कैसे होता है, यह बताते हैं—

उत्तम पुरुष सर्वज्ञ वीतरागदेव को नमस्कार करते हैं

विवाह काल में धनी और गरीब प्रत्येक स्त्री अपनी रुचि का गाना गाती है—'मोतियों का थाल भरा हुआ है और मेरे अमुक भाई के आंगन में हाथी झूलते हैं।' यह मोती के प्रति प्रेम और विवाह के प्रति राग का द्योतक है। इसीप्रकार जिसे राग के प्रति रुचि और रस है, उसकी ऊँची बात उसकी भावना में अवश्य आ जाती है। भगवान की स्तुति में भी ऐसा ही है। हे प्रभु! आपकी पवित्रता शक्ति में से व्यक्त हुई तो केवलज्ञान की लक्ष्मी की क्या बात करनी? घासतुल्य पुण्य के उदय से तुम्हारे नखों की शोभा में देवों के मस्तक-मुकुट सुशोभित होते हैं, वे तुम्हारे पास न नमें तो किसके पास नमें? अंतरंग में आपके प्रति नमने का भाव होने पर स्वप्न में भी दूसरे का आदर या आश्रय नहीं है।

हे प्रभु! आपके प्रति मेरी भक्ति एवं श्रद्धा का इतना वेग है कि वह भक्ति पाप का नाश करती है। देव भी आपके चरण कमल की भक्ति से पाप नष्ट कर लेते हैं। आप सर्वज्ञ परमात्मा

हूँ, पूर्ण हैं, देह छूटने के बाद सादि किंतु अनंत सिद्धदशा होती है। हे प्रभु! आपके चरण कमल भक्तों के पाप का विस्तार रोकने में निमित्त हैं। शुभराग के होने से अशुभ का बंध नहीं है। शुद्धता के भान में वह (अशुभ) विशेषरूप से नष्ट हो जाता है।

सर्वज्ञ भगवान पवित्रता और पुण्य में निमित्त हैं—

आपकी भक्ति के भाव से पापरूपी भाव का नाश होता है, उससे संसाररूपी वेल की परंपरा आगे नहीं बढ़ती। आपके चैतन्य चमत्कार पूर्ण दशा प्रगटी है। अत: हे नाथ! आप प्रथम गुरु हैं। अठारह कोड़ाकोड़ी सागर पर्यंत भरतक्षेत्र में युगलिए मनुष्य होते थे, उस समय मुनिधर्म नहीं था। उस काल के बाद आप प्रथम धर्मयुग के प्रवर्तक प्रथम तीर्थंकर हो। आपने सर्वप्रथम धर्म की स्थापना की।

आपकी स्तुति से पाप का वंश नष्ट होता है। आपकी अब तक संसार की परंपरा चली, अब नहीं चलेगी। ऋषभदेव जन्म के समय से तीन ज्ञान के धारी थे। वे जब राज्यसभा में बैठे थे तब नीलांजना नृत्य कर रही थी। उससमय उसकी आयु पूर्ण हो जाने से उसका शरीर विलय गया और इन्द्र ने उसके स्थान पर दूसरी देवी प्रस्तुत की। भगवान को ख्याल हुआ कि अहो! वैराग्य होनेयोग्य बात है, तभी उन्हें जातिस्मरण-ज्ञान हुआ, तभी वे गृहत्यागी बनकर नग्न दिगम्बर दशाधारी निर्ग्रंथ मुनि हुए। तत्पश्चात् वे केवलज्ञानी परमात्मा हुए, उन्होंने धर्मोपदेश दिया। हे नाथ! इसप्रकार आप ही धर्मयुग के प्रवर्तक हैं।

आपकी दिव्यध्वनी खिरी, अनेक जीव मुनि और सम्यग्दृष्टि हुए, किंतु जिनकी वैसा होने की योग्यता नहीं थी उन्होंने मोक्षमार्ग का विरोध किया। तब नरकादि गति में जाने का प्रारंभ हुआ। उससे पहले सब स्वर्ग में जाते थे, किंतु जब पूर्ण अविरोधी पवित्रता प्रगट हुई, तब उनका विरोध करनेवाले भी पाप में सावधान हुए, किंतु भगवान उनकी पापगति में निमित्तरूप नहीं हैं। अपने कार्य में भव्य जीव निमित्त मानते हैं, यहाँ अपूर्व कार्य किया तो उनको कारण माना जायेगा, वे इस काल में धर्म की आदि में ही हैं। वस्तुत: भगवान के चरणकमल मिथ्यात्वादि पाप का नाश करनेवाले हैं।

आपका उपदेश अगाध भवजल से तारनेवाला है। चक्रवर्ती हो या मनुष्य हो, या रागी या वैरागी हो, धनी हो या निर्धनी सभी के लिये भवसमुद्र से तरने में आप ही कारण हैं। भव्य जीवों के तारने में आपका सहारा है। आप ज्ञायकस्वरूप हैं, आप पूर्णानंद स्वरूप हो। जो

आपकी शरण लेता है, उसके संसार नहीं रहता। हे नाथ! आत्मा की शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान एवं रमणतारूप रत्नत्रय आपके पूर्ण हुए हैं। आपके उपदेश में आत्महित की यथार्थ बात प्रगट हुई है। कितने ही जीव धन की इच्छा में 'भक्तामर स्तोत्र' पढ़ते हैं और फिर दुकान खोलते हैं। जो भगवान की भक्ति से पैसा मिलना और सुखी होना मानता है, वह 'भक्तामर स्तोत्र' को नहीं मानता है। देव अपने महान पुण्य का आदर नहीं करते, तब इस लोक का तुच्छ पुण्य आदर योग्य नहीं है। मूढ़ जीव शरीर का रोग दूर करने के लिये द्रव्य माँगना चाहता है, किंतु भेदज्ञानयुक्त सम्यग्ज्ञान द्वारा अज्ञानरूप राग-द्वेष दूर करने योग्य हैं। हे नाथ! आपके चरण-कमल संसाररूपी अगाध समुद्र में डूबते हुए भव्य जीवों को तरने के लिये आधार हैं। जैसे छत पर चढ़ते समय जो रस्सी पकड़े हुए हो तो वह गिरे नहीं। उसीप्रकार मुझे आत्मा का यथार्थ भान तो है, किंतु शुभराग के समय आदि ही आलंबन स्वरूप है, संसार शरीर वा भोग का आलंबन जरा भी नहीं है।

सच्चा भक्त इसप्रकार समझकर सम्यक्‌रूप से नमन करता है

जो श्रद्धा और ज्ञानपूर्वक नमन करता है, उसे निश्चय और व्यवहार का विवेक होता है। आत्मा ज्ञानस्वरूप हैं, ऐसे ज्ञानपूर्वक देव आपको नमस्कार करते हैं। उन देवों में से किसी देव को श्रुतकेवली के समान बारह अंग का ज्ञान होता है, वह चतुर है, वह भी भक्ति में सराबोर रहता है। भगवान के जन्म के समय देव भक्ति करते हैं कि 'हे नाथ! आप तर गये, कृतकृत्य हो गये। हे नाथ! अज्ञानी जन तो कहते हैं कि ईश्वर जीव की सृष्टि करता है, संसार में अवतार धारण करता है, किंतु नाथ! आपका अवतार कैसा? आपका अंतिम जन्म तीर्थंकर रूप में हुआ और संसार में भ्रमण करनेवालों की संख्या घटी। लोग तो संसार में वृद्धि करनेवालों को 'जगदीश' कहते हैं किंतु आपके जन्म से संसारी जीव मोक्षमार्ग में गमन कर हमेशा के लिये भव बंधन वे मुक्त होता है, इससे अवतार लेनेवाले लोग कम होते हैं। अहो! ऐसा आपका अवतार है। दिव्यध्वनि खिरी और पूर्ण पद पावे, तब संसार में जीव कम होते हैं, इसप्रकार आप संसार के जीव बढ़ाने के बजाय घटाते हैं। जो देव बारह अंग के ज्ञाता हैं, वे पूर्ण श्रुतज्ञानी हैं, वे भी आपकी स्तुति और गुणगान गाते हैं। वे आपके जन्म के समय बालक की तरह गायन गाते हैं। आपकी स्तुति करनेवाला मूर्ख नहीं है किंतु बारह अंग का विशाल ज्ञानधारी भक्ति करता है। जब तक जीव सर्वज्ञ वीतराग न हो, तब तक भगवान की भक्ति का शुभराग आता है।

स्वानुभूति

१– शुद्धात्म–अनुभूतिरूप ज्ञान ही मोक्षमार्ग का साधक है।

२– बारह अंगों में भी शुद्धात्मानुभूति ही करने का उपदेश है।

३– जिसने शुद्धात्मानुभूति की, उसने बारह अंगों का सार जान लिया।

४– शुद्धात्मानुभूति होने पर अमुक शास्त्र कहना ही पड़े, ऐसा कोई प्रतिबंध नहीं है। ज्ञाता स्वसत्ता के अवलंबनपूर्वक स्वानुभूति से मोक्षमार्ग को साधता है।

५– अहो, स्वानुभूति की अचिंत्य महिमा है, यही खरी विद्या है।

६– शुद्धात्मानुभूति में ही प्रकाश है।

७– पराश्रयभाव के पर्वत फट भी जावें तो उसमें से मोक्षमार्ग नहीं निकले।

८– स्वावलंबन की किरण प्रकाशित हो तो उसमें से मोक्षमार्ग प्रकट हो।

९– आत्मानुभव परद्रव्य की सहायता से रहित है।

अरे जीव! तेरी ज्ञानधारा में च्युति, वह परावलंबन है, जितना भी परावलंबन है, वह मोक्ष का कारण नहीं है, फिर सर्वथा परावलंबी राग मोक्ष का कारण कैसे हो?

ध्येय की सिद्धि

* हे जीव! अपना ध्येय ऊँचे से ऊँचा रखना। ध्येय को जरा भी निर्बल मत बनाना।
* उस ध्येय की उत्तमता, उसकी महानता, उसकी गंभीरता और उसे साधने का भगीरथ प्रयत्न–इनको भी लक्ष में रखना।
* ध्येय जैसा महान है, वैसा ही उसे साधने का पुरुषार्थ भी महान है, उसे ध्यान में रखकर उस प्रयत्न में जो–जो त्रुटियाँ तुझमें हों, उनका संशोधन करना। अल्प प्रयत्न में संतुष्ट मत हो जाना।
* ध्येय को दृष्टि समक्ष रखकर, अपने प्रयत्न को उस ओर ही आगे बढ़ाता जा।
* ध्येय भूलना मत, प्रयत्न को छोड़ना नहीं। ऐसा करने से अवश्य ध्येय की सिद्धि होगी।

धर्म प्रभावनासहित तीर्थयात्रा के समाचार

जयपुरः—तारीख १५-१६ मार्च, श्री टोडरमल द्विशताब्दि महोत्सव चालू रखा गया था। जिसमें श्री पंडित चैनसुखदासजी, श्री पंडित कैलाशचन्दजी, श्री पंडित जगन्मोहनलालजी शास्त्री, श्री पंडित बंसीधरजी व्याकरणालंकार इंदौर, श्री पंडित प्रकाशचंदजी 'हितैषी', श्री पंडित गेंदालालजी शास्त्री, श्री पंडित परमानंदजी शास्त्री, श्री पंडित बालचंदजी शास्त्री, श्री पंडित डॉ. कस्तूरचंदजी काशलीवाल, श्री पंडित भंवरलालजी, श्री पंडित अनूपचंदजी-गुलाबचंदजी दर्शनाचार्य, श्री खेमचंदभाई सेठ, मोहनलालजी बड़जात्या आदि अनेक विद्वानों तथा व्यक्ति विशेष द्वारा श्री टोडरमलजी की पवित्र महिमा और उनके द्वारा वीतरागी विज्ञान का प्रचार तथा उनके द्वारा जैनधर्म का महान उत्तम कार्य आदि विषय पर भावपूर्ण वर्णन किया गया। टोडरमलजी स्मारक ग्रंथमाला के ध्रुव फंड में बहुत रकमें आईं। तारीख १६ के उत्सव के अंतिम दिन के उत्साह-भक्ति के निमित्त-विशाल रथयात्रा, १८ हाथी धर्मध्वज इन्द्रों सहित तथा १५ घोड़े, पाँच भजन मंडली, अनेक बेंड बाजे, ट्रक में अजमेर भजन मंडली द्वारा भक्तिनृत्य, विराट जुलूस में सम्मिलित १५-२० हजार संख्या का उत्साह, जयकार की गूँज, दर्शकों की भीड़ आदि विरल दृश्य जो देखते ही बनता था। अंतिम दिन का सवेरे का प्रवचन जयपुर शहर में महावीर पार्क में रखा गया था, बड़ी भारी संख्या ने श्री कानजीस्वामी का आध्यात्मिक प्रवचन सुना, दो नयों की कथन पद्धति और दिगम्बर जैन आचार्यों का प्रयोजन आत्महित में किस प्रकार है समझाया, आज का प्रवचन और समाज का परम उत्साह देखकर पंडित चैनसुखदासजी जो जयपुर में अग्रणी, निस्पृह और निडर नेता हैं, हृदय से बारंबार कहा कि—श्री कानजीस्वामी जो बात कहते हैं, वही बात तीर्थंकर भगवान भी कहते हैं, समझदार वर्ग द्वारा जो इस उपदेश का प्रवाह बढ़ रहा है, उसे कोई शक्ति रोकने में समर्थ नहीं। पंडित जी के पास जरा भी बनावट या दिखावा नहीं है, यह बात प्रसिद्ध है।

जयपुर में तारीख १६वीं मार्च को जिनेन्द्र भगवान की रथयात्रा का ऐसा विशाल जुलूस था। नगर निवासीजन कहते थे—ऐसा विशाल; शानदार जुलूस जैन रथयात्रा में कभी नहीं देखा।

शाम को सभा में सभी से आभारदर्शन की विधि, तथा जयपुर दिगम्बर समाज आदि

सबके द्वारा श्री पूरणचंद्रजी गोदीका को सम्मान पत्र दिया गया, सभी ने अपनी प्रशस्त धर्मभावना, तृष्णा त्याग की तथा सद्‌गुणों की प्रशंसा की। श्री गोदीकाजी ने अपनी लघुता प्रगट कर सम्मान पत्र अंगीकार न करते हुए स्वामीजी के चरणों के समीप रख दिया।

रात्रि को श्री महावीर दिगम्बर जैन हा०से० हाईस्कूल के छात्र-छात्राओं द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रम रखा गया था जो अति सुंदर आकर्षक था, उसमें टोडरमलजी के खास-खास प्रसंग दिखाकर, आदर्श क्षमा, विरागता, निर्मोहीपना, तत्त्वचर्चा के अद्‌भुत प्रसंग, घोर-उपसर्ग के समय अत्यंत धीर-वीर समता सहित समाधिमरण के विरल प्रसंग भी दिखाये गये। सबको बहुत प्रसंद आये, अच्छी रकम इनाम जाहिर किया गया, १४ साल की उम्र के विद्यार्थी श्री ककलभाई ने टोडरमलजी के अनुरूप हूबहू संवाद आदि करके बताया जो उनकी लघुवय प्रौढ़ विद्वान योग्य चेष्टा वास्तव में प्रशंसनीय है। बालाओं द्वारा भक्ति भजन कवि सम्मेलन भी था। ११ दिन का महान धर्म प्रभावनायुक्त कार्यक्रमों की योजना व्यवस्था में अपनी शक्ति भर उत्साह लगानेवाले सभी को तथा श्री नेमीचंदजी पाटनी, श्री महेन्द्रकुमारजी सेठी, श्री पूरणचंदजी; श्री सुधीरभाई गोदीका, डॉ. बख्शी, श्री भंवरलाल शाह, श्री ताराचंदजी गंगवाल, श्री कोमलचंदजी, श्री भरतेशकुमार जैन, श्री सुंदरजी गोदीका, श्री अजमेरा आदि सभी को हार्दिक धन्यवाद।

श्री महावीरजी—तारीख १७-३-६६ यहाँ ५०० यात्री एकत्र हो गये। पूज्य स्वामीजी का स्वागत तथा प्रवचन हुये थे, प्रथम स्वामीजी जिनमंदिर में वंदनार्थ गये थे। दोपहर को जिनमंदिर में समूह भक्ति थी, भोजन की सबके लिये व्यवस्था श्री पूरणचंदजी गोदीकाजी द्वारा थी। श्री पंडित अजितप्रसादजी शास्त्री साथ स्वामीजी ने प्रेमपूर्वक वार्तालाप किया था प्रवचन सुनकर पंडितजी ने खुशी बताई थी, संतोष व्यक्त किये।

स्वामीजी-शांतिवीरनगर में दर्शनार्थ गये थे।

बयाना —तारीख १८-३-६७

बयाना (जिला भरतपुर राजस्थान)—

- **बयाना शहर में अपूर्व मंगल सहित अपूर्व घोषणा**
- **स्वामीजी ने महान उल्लासपूर्वक प्रगट की हुई पूर्वभव की आनंदकारी बात**
- **५०० वर्ष प्राचीन सीमंधर प्रभु की प्रतिमा समक्ष भव्य उत्सव**

बयाना नगर में पहुँचते ही... सीमंधर भगवान जिस जिनमंदिर में विराजमान हैं, खास उन्हीं का दर्शन करने के लिये श्री कानजीस्वामी की खास भावना थी। अत: यहाँ का कार्यक्रम रखा गया था। इसीलिये तो श्री गुरुदेव के साथ सीमंधर भगवान के दर्शन करने में सभी यात्री समूह को बहुत हर्ष हुआ। प्रथम स्वामीजी जिनमंदिर में दर्शन करने गये, जिनेन्द्र भगवंतों को अर्घ चढ़ाते समय; दर्शन करते करते, जहाँ सीमंधर प्रभु के समीप में आते ही बहुत भक्तिभाव से स्वामीजी, सीमंधर भगवान को टकटकी लगाकर देखते रहे। ५०० वर्ष की प्राचीन प्रतिमाजी पर लेख में '**पूर्व विदेह के तीर्थ कर्त्ता श्री जीवंतस्वामी श्री सीमंधरस्वामि।**' बारंबार यह नाम पढ़कर इस लेख की नकल करने का स्वामी ने कहा, भक्तिभीगे चित्त से भगवान के समीप बहुत समय तक विनय सहित बैठे रहे, पश्चात् बहिनों के द्वारा सीमंधर नाथ की भक्ति हुई, स्वामीजी ने कहा कि—यहाँ श्री सीमंधर भगवान के दर्शन करने के लिये ही आये हैं। पश्चात् प्रवचन में सभा में मंगल प्रवचन में कहा कि—मंगल पाँच प्रकार हैं नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र और भाव; आत्मा का स्वरूप जो नित्य शुद्ध भूतार्थ स्वभाव है, वह मंगल है; उस स्वरूप को साधकर जो सर्वज्ञ परमात्मा हुए हैं, वह मंगल हैं; ऐसे परमात्मा सीमंधर भगवान आज भी विदेहक्षेत्र में विद्यमान-विराजमान हैं। और यहाँ भी स्थापना निक्षेप से सीमंधर परमात्मा विराजमान हैं। सोनगढ़ में भी सीमंधर भगवान पधराये गये हैं, किंतु यहाँ तो ५०० वर्ष प्राचीन प्रतिमाजी है। इसलिये खास दर्शनार्थ यहाँ आये हैं।

सीमंधरादि परमात्मा का नाम मंगलरूप है; आप जहाँ विराजमान हैं, वह स्थान क्षेत्र मंगलरूप है, जिस काल में उनके कल्याणक हुए वह काल भी मंगल है; और जो भाव से वे केवलज्ञानादि पाये वह सम्यक्त्वादि भाव भी मंगलरूप है। षट्खंडागम-धवल टीका में श्री वीरसेन स्वामी ने एक विशेष बात कही है कि—जो आत्मा तीर्थंकरादि होनेवाले हैं; केवलज्ञानादि प्राप्त करनेवाले हैं, वह आत्मद्रव्य भी त्रिकाल मंगलरूप है।

वर्तमान में सीमंधर भगवान पूर्व विदेहक्षेत्र में विराजमान हैं; दो हजार वर्ष पूर्व जिनकी वाणी सुनकर श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने शास्त्र रचे, वही सीमंधर भगवान आज भी विराजमान हैं, उनकी आयु कोटि-पूर्व वर्ष की है, जिसप्रकार २४ तीर्थंकर की स्थापना होती है, उसीप्रकार सीमंधर आदि तीर्थंकरों की भी स्थापना होती है, उसी का यहाँ ५०० वर्ष प्राचीन प्रमाण इस मूर्ति के शिलालेख में है।

हमारे सोनगढ़ में मानस्तंभ में चार ऊपर, चार नीचे, समवसरण में चतुर्मुखी तथा मंदिर में दो, इसप्रकार सीमंधर भगवान की स्थापना है। राजकोट, सौराष्ट्र, बम्बई, गुजरात तथा अन्यत्र मिलकर ४९ हैं। श्वेताम्बर मत में तो बहुत जगह प्राचीन मूर्ति है। परंतु यहाँ ५०० वर्ष प्राचीन प्रतिमाजी के दर्शन से हमें बड़ा प्रमोद आया है। जैसे यहाँ २४ तीर्थंकर हुए उसीप्रकार सीमंधर भगवान भी तीर्थंकररूप में विदेहक्षेत्र में आज हैं, क्या कहा जाये... दूसरी बहुत बात है...

मंगल श्लोक में महावीर भगवान और गौतम गणधर के बाद तीसरा नाम कुन्दकुन्दाचार्य का आता है। जो इस भरतक्षेत्र में दो हजार वर्ष पूर्व हुए महान संत थे, आत्मज्ञान अनुभूति के परम आनंदमय प्रचुर संवेदनस्वरूप स्वसंवेदन में झूलते थे, अतीन्द्रिय आनंद से विलसित ऐसे आप मद्रास के पास (८० मील दूर) पौन्नूर पहाड़ पर ध्यान करते थे; एक बार आपको भरतक्षेत्र में तीर्थंकर केवली का विरह सताने लगा और सीमंधर परमात्मा का ध्यान किया। उनको आकाश में गमन करने की चारणरिद्धि नामक महान रिद्धि थी, देह सहित आप स्वयं सीमंधर परमात्मा के समीप विदेहक्षेत्र में पधारे थे। अहा, आपकी पवित्रता तो अलौकिक थी कि—भरतक्षेत्र के मानव ने देह सहित यहाँ से लाखों मील दूर विदेहक्षेत्र के तीर्थंकर की यात्रा की। वहाँ आपने आठ दिन तक रहकर साक्षात् सीमंधर भगवान की दिव्यध्वनि सुनकर भरतक्षेत्र में आकर समयसारादि महान शास्त्र रचे, उस समय जो सीमंधर परमात्मा विराजमान थे, वह ही आज भी वहाँ विराजमान हैं।

यहाँ बयाना में तो ५०० वर्ष प्राचीन सीमंधर भगवान स्थापनाजीरूप विराजमान हैं ऐसा जब से सुना गया, तब से इन प्रतिमाजी के दर्शन करने की भावना थी, जयपुर में श्री टोडरमलजी स्मारक महोत्सव निमित्त यहाँ आना हुआ है। और भगवान का दर्शन हुआ, उनका हमारे ऊपर महान उपकार है, इस भव के पूर्व भव में हम श्री सीमंधर भगवान के समीप थे किंतु हमारी भूल के कारण यहाँ भरतक्षेत्र में आये हैं। श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव यहाँ से सीमंधर परमात्मा के पास जब आये और भगवान की वाणी सुनी, तब हम भी वहाँ उपस्थित थे, कुन्दकुन्दाचार्य का उस समय बराबर दर्शन किया था, यह दोनों बहिनों के आत्मा उस समय पुरुष पर्याय में थे, वह भी वहाँ उपस्थित थे, कुन्दकुन्दाचार्यजी को हमने वहीं पर साक्षात् देखा है। विशेष क्या कहें !... और भी बहुत गंभीर बात है। सीमंधर परमात्मा का यहाँ विरह हुआ;

यहाँ के बयाना में प्राचीन भगवान की स्थापना की बात सुनकर और आज साक्षात् उनका दर्शन कर हमें बहुत प्रसन्नता हुई।

इसप्रकार बहुत प्रमोद सहित स्वामीजी ने—गुरुदेव ने—सीमंधर प्रभु के चरण सानिध्य में हृदय के भावों को खोल दिया, श्रोताजनों के हर्षानंद का तो आज पार ही नहीं था, बयाना नगर में ऐसी बात प्रगट होगी... ऐसी आनंदकारी यात्रा की तो किसी को कल्पना भी नहीं थी- आज की आनंदकारी प्रसंग की चर्चा गुरुदेव बारंबार करते थे।

पूज्य स्वामीजी के अंतर में जो बात थी, वह एक अत्यंत महत्व की सुवर्णमय बात प्रगट कर दी,... सीमंधरनाथ के दर्शन से अंतरंग में जागृत हुई विदेहक्षेत्र के पवित्र संस्मरणों को आज आपने हृदय के आनंद सहित प्रगट कर दिया, कहा कि—'पूज्य भगवती आत्मा इस चम्पाबहिन को पूर्व के चार भव का जातिस्मरण ज्ञान है और पूर्व भव में सीमंधर भगवान के निकट थे, यह बात प्रसिद्ध करके आपने कहा कि—

देखो, यहाँ सीमंधर भगवान विराजमान हैं, सीमंधर भगवान की यहाँ साक्षी (गवाह) है—इन भगवान की सानिध्य में-साक्षी में यह बात यहाँ प्रगट करता हूँ कि—भगवती पवित्रात्मा चम्पाबहिन (जो सामने बैठे हैं उन्हीं को) चार भव का जातिस्मरण ज्ञान है। यह दोनों बहिन (चम्पाबहिन और शान्ता बहिन) पूर्व भव में विदेहक्षेत्र में थे, समवसरण में भगवान के पास जाते थे, पुरुष शरीर में थे, और अन्य एक भाई थे—हम चार जीव भगवान के समीप थे, किंतु हमारी भूल से हम इस भरतक्षेत्र में आये हैं। यहाँ ५०० वर्ष प्राचीन सीमंधर प्रभु स्थापनारूप से विराजमान हैं, उनको देखकर पूर्व के संस्मरण विशेष जागृत हो रहे हैं, बहुत प्रमोद आ रहा है।

इन परमात्मा के समीप में मैं यह बात आज यहाँ प्रगट करता हूँ कि इन दोनों बहिन को जो उस समय पुरुष थे हम मित्र थे—पूर्वभव में हम सीमंधर परमात्मा के निकट समवसरण में थे और यह चम्पाबहिन को चार भव का ज्ञान है, आत्मा के ज्ञान अनुभव उपरांत उन्हीं को तो चार भव का ज्ञान है। सीमंधर भगवान की साक्षी (गवाह) सहित समाज में यह बात प्रगट कर रहा हूँ, विवेकवान उलटा अर्थ नहीं करेंगे, हमारे ऊपर भगवान का महा उपकार है।

अहा, सीमंधर भगवान की समीप में गुरुदेव के ऐसे परम भावभीने हृदय के उद्‌गार सुनकर श्रोताजन हर्षानंद में लीन होते थे, तीर्थयात्रा में सब अपने में धन्य अनुभवने लगे।

विदेहीनाथ सीमंधर प्रभु की गुरुदेव ने महान आनंदपूर्वक यात्रा कराई, प्रत्येक यात्री दूसरी सब बात भूलकर सीमंधरनाथ की चर्चा में मशगूल बन गये थे। बयाना नगर में जहाँ देखो वहाँ गुरुदेव के द्वारा आज के हर्षानंदकारी हृदय के उद्‌गार का वातावरण दिख रहा था।

जयपुर के भव्य उत्सव के पश्चात् तुरंत ही ऐसा महान आनंदकारी प्रसंग बना, यह वास्तव में सीमंधर भगवान का प्रताप है और पूज्य कानजीस्वामी द्वारा, सर्वज्ञ वीतराग कथित मार्ग प्रभावना-भरतक्षेत्र में महान धर्मवृद्धि होनेवाली है, ऐसा सूचित करते हैं।

जय हो, सीमंधरनाथ की....

धन्य है—आज इसप्रकार प्रमोद सहित गुरुदेव ने बयाना में सीमंधर प्रभु के चरण समीप हृदय के भावों को खोल दिया, श्रोताओं को तो हर्ष का पार नहीं था। बयाना में ऐसी आनंदकारी यात्रा में धन्य अवसर बन गया।

मंगल प्रवचन के पश्चात् स्वामीजी को अपने हृदय के बहुत-बहुत भाव खोलने का मन था। प्रसन्नचित्त से आज ऐसी स्पष्ट बात सभा के बीच और सीमंधर भगवान की साक्षी में गुरुदेव ने आज जो प्रगट की वह खास अपूर्व नवीन घटना थी। श्रोतागण यह सुनकर धन्य अनुभव कर रहे थे।

दोपहर को भक्तों को भावना जाग उठी की सीमंधर भगवान का अभिषेक करें और गुरुदेव भी भगवान सीमंधरनाथ का अभिषेक करेंगे, बस अभिषेक की बोली हुई और गुरुदेव ने स्वयं भावभीने चित्त से परम भक्ति सहित अपने सीमंधरनाथ का अभिषेक किया, यह मंगल दृश्य देखकर यात्री संघ में तथा बयाना जैन समाज में हर्षपूर्वक जय-जयकार छा रहा था और बयाना में सीमंधरनाथ की इस यात्रा की खुशी में कुल ५५५५) रुपये जिनमंदिर को अर्पण किया गया।

दोपहर के प्रवचन में भी स्वामीजी बारंबार अपना प्रमोद व्यक्त करते थे, प्रवचन स्थल बराबर सीमंधर भगवान के सन्मुख निकट में ही था। अतः स्वामीजी को विशेष उमंग और भावना उल्लस रही थी, प्रवचन पश्चात् फिर भी एक बार सीमंधर प्रभु का दर्शन करके तथा दूसरे जिनमंदिर में भगवंतों का दर्शन करके इटावा की ओर प्रस्थान किया।

आगरा—स्वामीजी रात्रि को आगरा ठहर गये थे। धर्म जिज्ञासुओं की बड़ी भीड़ लग गई थी, रात्रि को शंका-समाधान का कार्यक्रम रखा गया था।

फिरोजाबाद—तारीख १९ रास्ते में सेठ छदामीलालजी के भव्य जिनमंदिर में भगवान के दर्शन किये। यात्रिकसंघ रात्रि को वहाँ ठहराया गया था। व्यवस्था उत्तम प्रकार की गई थी।

जसवंतनगर—में दिगम्बर जैन समाज ने रास्ते में ही स्वामीजी को घेर लिया, जुलूस पूर्वक श्री अमरचंदजी अपने गाँव में ले गये, जिनमंदिर में दर्शन कर मंगलीक सुनाया गया, यात्रिकसंघ का दिगम्बर जैन समाज ने स्वागत किया।

इटावा—१९वीं मार्च स्वामीजी का दिगम्बर जैन समाज द्वारा स्वागत, जिनमंदिर में दर्शन, मंगल प्रवचन, दोपहर को शास्त्र प्रवचन, रात्रि को शंका-समाधान आदि कार्यक्रम था। यहाँ खास स्वामीजी से लाभ लेने के लिये भिण्ड-जसवंतनगर आदि ८-१० गाँवों से १००० उपरांत साधर्मी पधारे थे, बड़ा भारी उत्साहमय वातावरण था। दिगम्बर जैन समाज के द्वारा स्वामीजी को सन्मान पत्र भेंट किया गया।

कानपुर—तारीख २० मार्च, दिगम्बर जैन समाज के द्वारा स्वामीजी का भव्य स्वागत, जिनमंदिर में दर्शन पश्चात् मंगल प्रवन, दोपहर को टाउन हॉल में प्रवचन रखा गया था, रात्रि को जिनमंदिर में भक्ति का कार्यक्रम था। कानपुर दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल तथा सागर निवासी सेठ भगवानदास शोभालाल, तथा सारा कानपुर दिगम्बर जैन समाज का अपार प्रेम था, दिगम्बर जैन समाज की ओर से स्वामीजी को सम्मान-पत्र भेंट किया गया।

इलाहाबाद—तारीख २१ यहाँ स्वामीजी का स्वागत तथा जिनमंदिर में प्रवचन हुआ था।

बनारस—तारीख २२-३-६७ पूज्य स्वामीजी का स्वागत, जिनमंदिरों में दर्शन, मंगल प्रवचन तथा दोपहर को बड़ी विशाल सभा में प्रवचन, उस समय विद्वान वर्ग सब उपस्थित थे, विद्वानों द्वारा श्रद्धांजलियाँ सहित दिगम्बर जैन समाज की ओर से सम्मान-पत्र अर्पण किया गया था, ६०० करीब यात्रिकसंघ तथा पूज्य स्वामीजी की सेवा में वाराणसी दिगम्बर जैन समाज ने बहुत प्रेम पूर्वक सेवा दी। उपरांत पंडित श्री कैलाशचन्द्रजी आदि ने सारा दिन बिना विराम लिये उत्तम व्यवस्था रखी थी। सभा में अनेक विद्वानों ने प्रासंगिक विवेचन किये थे।

डालमियानगर—तारीख २३ यहाँ भी उत्तम व्यवस्था थी, स्वामीजी तथा यात्रिकसंघ का स्वागत-स्वामीजी का प्रवचन और सभी मेहमानों की व्यवस्था रखी थी, यहाँ से सीरघाट होकर—

सम्मेदशिखर—मधुवर, तारीख २४ से तारीख ३० वीं मार्च। यहाँ कलकत्ता मुमुक्षु मंडल की ओर से स्वामीजी तथा यात्रियों का स्वागत आदि व्यवस्था थी, हमेशा दो बार प्रवचन, दोपहर को तथा रात्रि को जिनमंदिर में समूह भक्ति का कार्यक्रम था।

तारीख २४ को श्री प्रेमचंदजी मालिक जैनावाच कं० दिल्ली की ओर से कलशाभिषेक संबंधी रथयात्रा थी, जुलूस निकालकर मधुवन पांडुकशिला पर जिनेन्द्र का जलाभिषेक किया गया था।

तारीख २५ यात्रिकसंघ द्वारा—श्री बाहुबली भगवान के अभिषेक के लिये इन्द्रों की बोली, जुलूस निकालकर बड़े ठाठबाट से अभिषेक किया गया। बड़ी रकम की आमदनी हुई जो एकत्र करके बीसपंथी कोठी के जिनमंदिर में दी जायेगी और।

तारीख २६-३-६७ फाल्गुन सुदी १५ को पूज्य कानजीस्वामी के साथ सभी यात्रिकसंघ ने शिखरजी की वंदना यात्रा की। उसके परम आनंद के उपलक्ष में तारीख २७-३-६७ को विशाल रथयात्रा निकाली गई—इन्द्रों आदि की बोली में अच्छी बड़ी आमदनी हुई। वह रकम तेरापंथ जिनमंदिर खाते दी जायेगी, दुष्काल पीड़ितों के लिये १०००) का चंदा किया था और हमेशा दो से तीन हजार क्षुधार्थि को भोज्य वस्तु दी जाती थी, पूज्य कानजीस्वामी तारीख ३० मार्च को प्रस्थान करके पावापुरी आदि होकर तारीख ६-४-६७ को कलकत्ता पधारेंगे... यात्रिकसंघ चंपापुरी, मंदारगिरि, पावपुरी, राजगृही आदि होकर तारीख ६-४-६७ लगभग कलकत्ता पहुँचेंगे। वहाँ से वापिस लौटते समय - गया, अयोध्या, लखनौ, बुलन्दशहर, दिल्ली, मथुरा, आगरा, फिरोजाबाद, जयपुर पहुँचने का कार्यक्रम है।

पूज्य कानजीस्वामी का कार्यक्रम निम्न प्रकार है।

तारीख २८-३-६७ ईसरी में खास पूज्य स्वामीजी उदासीन आश्रम श्री वर्णीजी स्मारक, नूतन जिनमंदिर श्री ब्र०कृष्णाबाई का आश्रम देखने के लिये तथा जिनमंदिर में दर्शनार्थ गये थे-वहाँ अधिष्ठाता श्री ब्र० सुरेन्द्रनाथ से भी मिले थे।

गिरडीह—तारीख २९-३-६७ दिगम्बर जैन समाज के खास आमंत्रण से पधारे थे, जिनमंदिर में दर्शन पश्चात् प्रवचन का कार्यक्रम था, मधुवन में यात्रियों को लेने के लिये गिरडीह समाज ने बस भेजी थी। उत्तम व्यवस्था की गई थी।

ब्र० गुलाबचंद जैन

तारीख ३०-३-६७

अब निम्न प्रकार कार्यक्रम शेष है।

तारीख ३०-३१ मार्च—पावापुरी। तारीख १-४-६७—कोडरमा, तथा हजारीबाग। तारीख २-४-६७—रांची। तारीख ४-४-६७—धनबाद। तारीख ५ —चन्द्रनगर (चिनसूरा)। तारीख ६ से ७ अप्रेल—कलकत्ता। तारीख ९ रात्रि—चिनसुरा। तारीख १०—ईसरी। तारीख ११—गया। तारीख १२—वाराणसी। तारीख १३—खागा। तारीख १४—भवनपुर। तारीख १५—फिरोजाबाद। तारीख १६—बुलन्दशहर। तारीख १७-१८-१९—दिल्ली। तारीख २०—मथुरा। तारीख २२—आगरा (महावीर जयंती)। तारीख २३—जयपुर। तारीख २४—अजमेर। तारीख २५—चित्तोड़। तारीख २६—कूण (जिनेन्द्र वेदी प्रतिष्ठा उत्सव)। तारीख २७ से ३०—जिनेन्द्र वेदी प्रतिष्ठा महोत्सव। तारीख ३० शाम को—केसरियाजी। तारीख १—बांझणवाडा। तारीख २—अहमदाबाद। तारीख ३—धंधुका। तारीख ४—बोटाद।

अदम्य उत्साह

जिसे जिसकी लगन लग रही है, वह उनके उपाय में काल की सीमा बांध लेता नहीं; और उस ध्येय को प्राप्त करने के उद्यम में देर भी लगाता नहीं। चैतन्य की लगन के द्वारा उसकी प्राप्ति के उद्यम में जो लग रहा है, वह उसे प्राप्त किये बिना रहता नहीं। जिसकी प्रीति लग रही, उसकी प्राप्ति के प्रयत्न में देरी नहीं होती, न थकान भी होती, न काल की सीमा होती, अदम्य उत्साह से उसके प्रयत्न में उद्यमी रहकर उसकी प्राप्ति करता ही है।

ज्ञान-भावना

आत्मा ज्ञानस्वरूप है।

बाहर के कोई भी संयोग-सुविधा के हों या असुविधा के हों, उनसे भिन्न तथा उस संयोग के ओर की भावनाओं से दूर जो तत्त्व अंतर में है, वही मैं हूँ।—इसप्रकार निज स्वरूप के अस्तित्व को जानकर बारंबार उसका चिंतन वह ज्ञान-भावना है।

निज स्वरूप के चिंतन में ही जिसका मन लगा हो, उसे दुनिया के दूसरे प्रसंग सता नहीं सकते, डिगा नहीं सकते।

ज्ञान ही मैं हूँ, ज्ञान से भिन्न दूसरा कुछ मैं नहीं हूँ। इसप्रकार सूक्ष्म बुद्धि से भेद किया वहाँ ज्ञान में ही एकत्वबुद्धि रही। इसलिये ज्ञान की ही भावना रही और अन्य भावों की भावना छँट गई।—इसप्रकार ज्ञानी सदा ज्ञानभाव में ही तत्पर है।

ज्ञान को प्राप्त ज्ञानी संत की महिमा के विचार ज्ञानभावना का पोषण करनेवाले हैं। ज्ञान की महिमा के साथ वैराग्य भी अति तीव्र होता है; ज्ञानभावना वैराग्य को भी तीव्र बनाती है।

❀ ज्ञान भावना में वीतरागी शांति है।

❀ ज्ञान भावना सर्व दुःख दमन की अमोघ औषधि है।

❀ ज्ञान भावना में तत्पर ज्ञानियों को नमस्कार।

आत्मधर्म के ग्राहकों से निवेदन

आत्मधर्म मासिक पत्र द्वारा सर्वज्ञ वीतराग कथित दिगम्बर जैनाचार्यों द्वारा जो निर्मल तत्त्वज्ञान प्रगट हो चुके हैं, उनकी परंपरा से ही यह प्रचार होता है। नयी बात नहीं है स्वाश्रय से ही पवित्र मोक्षमार्ग और उसका फल तथा उससे विपरीतता में बंध मार्ग और उसका फल संसार होता है, इस महान सिद्धांत को समझ ले तो स्वसन्मुखता और सच्चा भेदविज्ञान होता है। आत्मधर्म के ग्राहकों की संख्या २५०० उपरान्त हो चुकी है। आगामी चैत्र मास में वार्षिक शुल्क (चंदा) पूर्ण हो जाता है। और वैशाख मास से नया वर्ष शुरु होता है, उसे याद करके शीघ्रता से मनिआर्डर द्वारा या हरेक गाँव में जितनी संख्या में ग्राहक हों, एक साल के तीन रुपये के हिसाब से एकत्र करके प्रथम से ही रुपया भेज दीजियेगा। वी.पी. करने में व्यर्थ ८५ पैसे खर्च और अनेक कठिनाई रहती है। चंदा भेजते समय आपके चालू ग्राहक नंबर और पता स्पष्ट लिखियेगा। जो भाई बहुत पीछे से चंदा भेजते हैं, और दो मास बाद ग्राहक बनते हैं। उन्हें अंक की कमी पड़ जाने से पूर्व के अंक नहीं भेज सकते हैं। अत: सर्वज्ञ वीतराग कथित पवित्र ज्ञानयज्ञ में सहयोग देकर अपने परिचितों को ग्राहक बनाकर ग्राहक संख्या बढ़ाने की प्रार्थना है। अब की बार आत्मधर्म का वार्षिक चंदा–तीन रुपया वार्षिक रखा है।

राजकोट में:—

जैन विद्यार्थियों के लिये शिक्षणवर्ग

ग्रीष्मकालीन छुट्टियों के समय सोनगढ़ में प्रतिवर्ष जैन विद्यार्थियों के लिये शिक्षणवर्ग चलाया जाता है; जिसमें सैकड़ों विद्यार्थी धर्म संस्कारों का लाभ लेते हैं।

इस वर्ष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, वैशाख शुक्ला ३ के दिन राजकोट पधार रहे हैं। इसलिये शिक्षणवर्ग भी गुरुदेव की छत्रछाया में राजकोट में चलेगा। ऐसा धार्मिक शिक्षणवर्ग अपने नगर में चलाये जाने का यह पहला अवसर होने से राजकोट दिगम्बर जैन संघ अति उत्साहित है।

शिक्षणवर्ग तारीख १२–५–६७ शुक्रवार, वैशाख शुक्ला ३ से प्रारम्भ होकर तारीख ३१–५–६७, गुरुवार ज्येष्ठ कृष्णा ८ तक २० दिन चलेगा। राजकोट नगर में चलनेवाले इस शिक्षणवर्ग में लाभ लेने के लिये जैन विद्यार्थी बन्धुओं को हम सादर आमंत्रित करते हैं।

रहने तथा भोजन की व्यवस्था राजकोट दिगम्बर जैन संघ की ओर से की जायेगी। यह शिक्षणवर्ग मात्र जैन पुरुषों के लिये है।

तदुपरान्त राजकोट के समवसरण एवं मानस्तंभ की प्रतिष्ठा का वार्षिक उत्सव भी वैशाख शुक्ला ११ के दिन पूज्य गुरुदेव की छत्रछाया में मनाया जायेगा, जिसमें पधारने के लिये आप सबको हमारा हार्दिक आमंत्रण है।

राजकोट दिगम्बर जैन संघ

ठि० पंचनाथ प्लोट, राजकोट (सौराष्ट्र)

मोक्षमार्गप्रकाशक (आधुनिक हिन्दी भाषा में)

आचार्यकल्प श्री पंडित प्रवर टोडरमलजी कृत यह उत्तम रचना है। मूल स्वहस्त लिखित प्रति द्वारा अक्षरश: अनुवाद कराके, मिलान कराके, बड़े भारी श्रमपूर्वक और अपूर्व उत्साह द्वारा यह प्रकाशन छप चुका है और पंडित जी कृत रहस्यपूर्ण चिट्ठी तथा कविवर पंडित बनारसीदासजी कृत परमार्थ वचनिका; निमित्त-उपादान चिट्ठी यह तीन अधिकार भी मूल प्रतियाँ प्राप्त करके प्रकाशन में लगा दी हैं। प्रथम से ही इनके १०५०० संख्या के ग्राहक हो चुके हें। वे सब साधर्मीजन तीव्र जिज्ञासा सहित भारी तकादा कर रहे हैं, अब उन्हें आर्डर के माफिक प्रतियाँ शीघ्र ही भेजी जा रही हैं। लागत मूल्य ४.५० हुआ है किंतु इसका उत्तम ज्ञान प्रचार हेतु मात्र २) मूल्य रखा गया है। जिन्हें पुस्तक चाहिये वे शीघ्रता से नये आर्डर बुक करा देवें।

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

श्री समयसार कलश टीका

श्री राजमलजी पांडे कृत प्राचीन हस्त लिखित प्रतियों से बराबर मिलान करके आधुनिक राष्ट्रभाषा में, सुंदर ढंग से, बड़े टाइप में उत्तम प्रकाशन:—

आत्महित का जिसको प्रयोजन हो उनके लिये गूढ़ तत्त्वज्ञान के मर्म को अत्यंत स्पष्टतया खोलकर स्वानुभूतिमय उपाय को बतानेवाला यह ग्रंथ अत्यन्त रोचक उपरांत अनुपम ज्ञाननिधि है। पंडित राजमलजी ने (विक्रम सं० १६१५) पूर्वाचार्यों के कथनानुसार आध्यात्मिक पवित्र विद्या के चमत्कारमय यह टीका बनाई है। लागत मूल्य ५) होने पर घटाया हुआ मूल्य २.७५ है। पोस्टेज - १.४५

पता —श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

परमपूज्य श्री कानजी स्वामी के आध्यात्मिक वचनों का अपूर्व
लाभ लेने के लिये निम्नोक्त पुस्तकों का—

अवश्य स्वाध्याय करें

श्री समयसार शास्त्र	५–०
श्री प्रवचनसार शास्त्र	४–०
श्री नियमसार शास्त्र	४–०
श्री पंचास्तिकाय संग्रह शास्त्र	३–५०
समयसार प्रवचन, भाग १–२–३	अप्राप्य
समयसार प्रवचन भाग ४	४–०
[कर्ताकर्म अधिकार, पृष्ठ ५६३]	
आत्मप्रसिद्धि	४–०
मोक्षशास्त्र बड़ी टीका (तृ०), पृष्ठ–९००	५–०
स्वयंभू स्तोत्र	०–५०
मुक्ति का मार्ग	०–५०
मोक्षमार्ग–प्रकाशक की किरणें प्र०	१–०
'' ''द्वितीय भाग	२–०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला, भाग १–२–३	०–६०
योगसार–निमित्त उपादान दोहा, बड़ा टा.	०–१२
श्री अनुभवप्रकाश (दीपचंद्रजी कृत)	०–३५
श्री पंचमेरु पूजा संग्रह आदि	१–०
बृ.दसलक्षण धर्मव्रत उद्यापन पूजा	०–७५
देशव्रत उद्योतन प्रवचन	६–०
अष्टप्रवचन (ज्ञानसमुच्चयसार)	१–५०
मोक्षमार्गप्रकाशक (श्री टोडरमलजी कृत) आधुनिक भाषा में	प्रेस में
समयसार कलश टीका (पं. राजमल्लजी पांडे कृत) आधुनिक भाषा में	प्रेस में

[डाकव्यय अतिरिक्त]

जैन बाल पोथी	०–२५
छहढाला बड़ा टाईप (मूल)	०–१५
छहढाला (नई सुबोध टी.ब.) सचित्र	१–०
ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	प्रेस में
सम्यग्दर्शन (तीसरी आवृत्ति)	१–८५
जैन तीर्थयात्रा पाठ संग्रह	१–४५
अपूर्व अवसर अमर काव्य पर प्रवचन प्रवचन और श्री कुंदकुंदाचार्य द्वादशानुप्रेक्षा व लघु सामा. प्रेस में	
भेदविज्ञानसार	२–०
अध्यात्मपाठ संग्रह	४–०
वैराग्य पाठ संग्रह	१–०
निमित्तनैमित्तिक संबंध क्या है ?	०–१५
स्तोत्रत्रयी	०–५०
लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०–२५
'आत्मधर्म मासिक' इस एक वर्ष के लिये	२–०
'' पुरानी फाईलें सजिल्द	३–७५
शासन प्रभाव तथा स्वामीजी की जीवनी	०–१२
जैनतत्त्व मीमांसा	१–०
बृ०मंगल तीर्थयात्रा सचित्र गुजराती में ग्रन्थ का मात्र	१८) ६–०
अभिनंदन ग्रंथ	७–०

मिलने का पता—
श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मुद्रक—नेमीचन्द बाकलीवाल, कमल प्रिन्टर्स, मदनगंज (किशनगढ़)
प्रकाशक—श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के लिये—नेमीचन्द बाकलीवाल।